

---

ISSN 0975-850X

# अनुसंधान शोध त्रैमासिक

## अक्टूबर – दिसम्बर 2013

---

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त  
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली

### सम्पादक

**डॉ. शगुफ़ता नियाज़**

असि. प्रोफेसर हिन्दी,  
वीमेन्स कॉलेज,  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

### सलाहकार सम्पादक

**डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद**

हिन्दी विभाग,  
हलीम मुस्लिम पी. जी. कॉलेज,  
चमनगंज, कानपुर  
09044918670

### परामर्श मण्डल

प्रो. रामकली सराफ (बी. एच. यू.)  
मूलचन्द सोनकर (वाराणसी),  
डॉ. मेराज अहमद (अलीगढ़)

### सहयोग राशि :

एक प्रति : 40/- रु., वार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 220/- रु., द्विवार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 380/- रु.,  
आजीवन सदस्य : 1500/- रु., संस्थाओं के लिए आजीवन : 2,000/-

---

---

**सह-सम्पादक :**

विनीत कुमार (अलीगढ़),  
सलीम मुजावर, फ़ोन-9480781006

**कानूनी सलाहकार :**

एम. एच. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)  
एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)  
डॉ. संजय सिंह, एडवोकेट(अलीगढ़)

**सम्पादन सहयोग :**

यूसुफ अली (अलीगढ़)

**सम्पादन/संचालन :**

अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक।  
रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं।  
रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।  
लेखकों, सदस्यों एवं मित्रों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।  
उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।  
किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।

**शुल्क भेजने का पता :**

**मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट :** डॉ. शगुफ़ता नियाज़ के नाम  
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002

---

डॉ. शगुफ़ता नियाज़ की ओर से डॉ. शगुफ़ता नियाज़ द्वारा प्रकाशित, डॉ. शगुफ़ता नियाज़ द्वारा मुद्रित तथा रुचिका प्रिंटर्स दिल्ली में मुद्रित एवं **बी-4, लिबर्टी होम्स, अब्दुल्लाह कॉलेज रोड, अलीगढ़-202002** से प्रकाशित।

## सम्पादकीय

प्रकाश जी का आलेख 'हिन्दी के महत्त्वपूर्ण प्रेम कवि: अशोक वाजपेयी' है। जिसमें उन्होंने वाजपेयी को सर्वाधिक प्रेम कविताएं लिखने वाला कवि माना है। अशोक जी ने उस चुनौतीपूर्ण समय में प्रेम और शृंगार को अपनी कविता का विषय बनाया है जब प्रेम और शृंगार न केवल हिन्दी कविता में उपेक्षित थे बल्कि सामाजिक समय में प्रेम की आभा मिटने लगी थी। अशोक की कविताओं में प्रेम, रति, शृंगार जैसी बहुमूल्य मानवीय संवेदनाओं का सार्थक पुनर्वास किया है। प्रकाश ने अशोक के प्रेम संबंधी विचारों में देह को भी नवीन रूप में व्याख्यायित किया है।

'हिन्दी कथा: उद्भव, परिभाषा एवं स्वरूप' यशपाल सिंह रावत का आलेख है। जिसके अंतर्गत लेखक ने हिन्दी कथा के उद्भव पर प्रकाश डाला है। रावत ने बड़े परिश्रम से हिन्दी कथा के संवेदना पक्ष उद्भव, परिभाषा व स्वरूप पर विस्तार से चर्चा की है।

आकाश वर्मा का आलेख नचिकेता का स्त्री विमर्श में जनवादी गीतकार नचिकेता के गीतों पर विचार विमर्श किया है कि किस प्रकार नचिकेता ने शक्तिदायिनी वत्सला नारी के जीवन को अपने गीतों में ढाला है। उसी स्त्री के जीवन यथार्थ और विडम्बनाओं, उसके सुख-दुख, अभावों व अत्याचारों को अपने गीतों में ढाला है और स्त्री जीवन के यथार्थ को उभारकर समाज के साथ-साथ पुरुषवादी मानसिकता व्यवस्था पर ही आक्षेप करने का कार्य किया है।

'रीतिकालीन समाज में नारी' विनीता शुक्ला का आलेख है। इस आलेख में नारी की दयनीय और शोचनीय स्थिति का वर्णन किया गया है और उसके कारणों को भी बताया गया है कि रीतिकालीन समाज में सशक्त दण्ड विधान न होने के कारण नारी की दशा दयनीय थी।

डॉ. गीता सिंह का आलेख नारी की मुक्ति नामक शीर्षक में नारी जीवन की त्रासदी को उकेरा है कि जिस देश ने चींटी को प्राणी मानकर उसकी हत्या भी हिंसा में आती है वहीं स्त्री को जिंदा जला दिया जाता है, कन्या

के भ्रूण पेट में ही मार दिये जाते हैं और इसके पीछे कारण लेखिका पुरुष के नहीं वरन् विकृत मानसिकता को मानती है।

'दलित साहित्य और साहित्यकार : एक विवेचनात्मक विश्लेषण' डॉ. अमित शुक्ल जी का आलेख है। जिसमें उन्होंने डॉ. अम्बेडकर, दलित साहित्य परम्परा और अम्बेडकरवाद, दलित साहित्य और मार्क्सवाद, दलित साहित्य और नीग्रो साहित्य, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र शीर्षक के अंतर्गत यह बताने का प्रयास किया है कि दलित साहित्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सजग है। दलित साहित्य ने ही सामाजिक विषमताओं और क्रूरता का बोध कराया है और अमानवीय व्यवहार को दिखाकर उसे दूर करने की कोशिश की गयी है।

डॉ. सफराम्मा का लेख 'प्रेमचंद एवं बामा की कहानियों में दलित' में प्रेमचंद की सद्गति और तमिल लेखिका बामा की कसुम्पूकारन व पणक्कारी कहानियों में दलितों पर किये गये शोषण की करुण गाथा चित्रित की है।

'हबीब तनवीर के नाटकों के संवादों में लोकरंग और बिम्ब योजना' विनीता त्यागी का आलेख है। हबीब तनवीर ने अपने सम्पूर्ण नाटक भारतीय जनमानस के लिए लिखे व मंचित किये। जिसके कारण इनके नाटकों में व्याप्त लोकरंग की अनुभूति दर्शक व श्रोता को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। इस लोकरंगानुभूति और लोकाभिव्यक्ति के पीछे अनेक तत्त्व समाहित हैं। अपने नाटकों में इन्होंने बिम्बों का समायोजन करके नाटक में सजीवता को जन्म दिया है।

डॉ. मंजरी गुप्ता का आलेख 'नरेश मेहता की काव्य दृष्टि' है। उसमें उनके काव्य 'संशय की एक रात' का विशद विश्लेषण किया गया है। गुप्ता ने नरेश मेहता की कृतियों में मानवता के प्रति गहन प्रेमभाव व उच्च भविष्य के प्रति गहन आस्था को प्रस्तुत किया है।

'हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ' साजिद मजीद का आलेख है। इस आलेख में उन्होंने प्रेमचंद, नागार्जुन,

रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त, शिवप्रसाद सिंह, श्रीलाल शुक्ल, रामदरश मिश्र आदि के उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ को उजागर करने का प्रयास किया है।

बाबासाहेब माने का आलेख 'एक जिंदगी ऐसी भी' है। लेखक की इस दर्दभरी आपबीती को देखने के बाद यह विचार अनायास ही मन में कौंधता है कि एक जिंदगी ऐसी भी होती है जो मुसीबतों को पार करने के बाद जीने के लिए प्रेरित करने की बजाय मरने के लिए उकसाती है। अतः ऐसी जिंदगी कभी किसी को नहीं मिलनी चाहिए, परंतु जिंदगी के प्रति लेखक में जो आत्मविश्वास भरा हुआ, वही आत्मविश्वास लेखक को भविष्य की जिंदगी जीने के लिए प्रेरित करता है।

अनीता आर्या का आलेख 'महादेवी वर्मा के काव्य में दार्शनिक चिंतन' में महादेवी को वेद-वेदांतों का भी विशेष ज्ञान था और ब्रह्म, सृष्टि, माया के संदर्भ में उनके काव्य को देखा गया है।

'हिन्दी सूफी काव्य में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियाँ' अफजाल अहमद का आलेख है। इसमें उन्होंने असाइत कवि की हंसावली से प्रारम्भ करते हुए मुल्ला दाउद की चंदायन, कुतुबन की मृगावती, जायसी की पद्मावत, मंझन की मधुमालती, उस्मान की चित्रावली एवं शेख नबी की ज्ञानदीप के विभिन्न कथा-कहानियों में बार-बार प्रयोग होने वाली घटनाओं, विचारों को कथानक-रूढ़ियाँ कहा जाता है। इसी कथानक-रूढ़ियों को लेखक ने अपने आलेख में प्रस्तुत किया है।

विकास कुमार का आलेख 'महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति' में लेखक ने भौतिकतावादियों को यह बताने की आवश्यकता महसूस की है कि आध्यात्मिक सत्ता है और महादेवी के काव्य में आध्यात्मिक चेतना, आलौकिक साधना अपने सर्वोत्तम रूप में विद्यमान है।

'विरक्ति और वैराग्य के विरोध के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य' आलेख में निर्मला देवी ने हजारी प्रसाद द्विवेदी को मानवतावादी माना है और एकान्तिक साधना की अपेक्षा सामाजिक सक्रियता को महत्त्व दिया है।

जाविद अली का आलेख 'नज़ीर अकबराबादी की धार्मिक चिंतनधारा' में नज़ीर के विचार को स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है कि नज़ीर धर्म को ही परम् शक्ति बताते हैं जो व्यक्ति को अपनी अस्मर्थता का बोध कराकर आस्थामय आयाम देता है।

संगम वर्मा का आलेख 'मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों की व्यंग्यात्मकता' है। उनके उपन्यासों में व्यंग्य बिल्कुल सपाट है एकदम सपाट जो सीधे मुँह बात करता है और बिल्कुल खरी। इसलिए भीगे जूते की मारक क्षमता जैसा व्यंग्य उनके सभी उपन्यासों में दीख पड़ता है।

'मेरी भव बाधा हरो' आलेख में नारी की समस्याओं का विशद लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त एक अन्य आलेख-नरेन्द्र मोहन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व है जिसमें हुच्चणवर जी नरेन्द्र मोहन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

शगुफ़ता

## वाङ्मय पत्रिका, अलीगढ़

वाङ्मय पत्रिका आदिवासी विशेषांक-1 प्रकाशित  
और

आदिवासी विशेषांक-2, नवम्बर 2013 में प्रकाशित होगा।

सम्पर्क- 205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन,

अलीगढ़-202002, मोबाइल नं. 09044918670

---

## अनुक्रम

**सम्पादकीय/3**

**प्रकाश**

हिन्दी के महत्त्वपूर्ण प्रेम कवि: अशोक वाजपेयी/6

**यशपाल सिंह रावत**

हिन्दी कथा : उद्भव, परिभाषा एवं स्वरूप/11

**आकाश वर्मा**

नचिकेता का स्त्री विमर्श/17

**डॉ. विनीता शुक्ला**

रीतिकालीन समाज में नारी/20

**डॉ. गीता सिंह**

नारी की मुक्ति/24

**डॉ. अमित शुक्ल**

दलित साहित्य और साहित्यकार : एक विवेचनात्मक विश्लेषण/28

**डॉ. सफराम्मा तिरुनेलवेली**

प्रेमचंद एवं बामा की कहानियों में दलित/35

**विनीता त्यागी**

हबीब तनवीर के नाटकों के संवादों में लोकरंग और बिम्ब योजना/38

**डॉ. मंजरी गुप्ता**

नरेश मेहता की काव्य दृष्टि/43

**मोहम्मद साजिद मजीद**

हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ/49

**प्रा. बाबासाहेब माने**

एक जिंदगी ऐसी भी/52

**अनीता आर्या**

महादेवी के काव्य में दार्शनिक चिंतन/56

**अफजाल अहमद**

हिन्दी सूफी काव्य में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियाँ/58

**विकास कुमार**

महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति/61

**निर्मला देवी**

विरक्ति और वैराग्य के विरोध के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य/64

**जाविद अली**

नज़ीर अकबराबादी की धार्मिक चिंतनधारा/66

**संगम वर्मा**

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों की व्यंग्यात्मकता/69

**माला कुमारी**

मेरी भव बाधा हरो में : परम्परा और स्त्री विमर्श/72

**श्रीमती वनदेवी दु. हुच्चणवर**

नरेन्द्र मोहन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व/75

---

# हिन्दी के महत्त्वपूर्ण प्रेम कवि : अशोक वाजपेयी

## प्रकाश

अशोक वाजपेयी हिंदी के महत्त्वपूर्ण प्रेम कवि हैं। उनका मानना है कि पिछली सदी में किसी भी अन्य हिंदी कवि के मुकाबले सर्वाधिक प्रेम कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। वे संख्या की बात करते हैं, कविताओं की गुणवत्ता का निर्णय पाठकों के पास छोड़ देते हैं।

अन्य कविताओं की तरह उनकी प्रेम कविताओं पर भी कम बात की गई है। अत्यल्प संतुलित आलोचना की बात छोड़ दें तो अशोक वाजपेयी अपने ही प्रिय पद 'पूर्वग्रह' का गंभीर शिकार हुए (प्रेम-) कवि हैं। इस प्रसंग में अशोक वाजपेयी की प्रेम-कविता का पुनःपाठ जरूरी है।

अस्तित्व की अपूर्णता का तीव्र अहसास प्रेम के जन्म का कारण है। यह प्रेमी के खंडित, आधे-अधूरे होने की अनुभूति है। अनुभवगम्य होने के कारण प्रेम को भाषा की विशेष दरकार नहीं होती। लेकिन जब प्रेम के अनुभव अभिव्यक्त होने की आकांक्षा करने लगते हैं तो उन्हें भाषा की देह और कविता की वाणी से अभिव्यक्त यानी मुक्त होना पड़ता है। प्रेम देह-रहित अनुभूति है और कविता भाषिक काया, जिसकी वाणी से यह अनुभूति मुक्त होती है। प्रेम की अनुभूति इस भाषिक काया में स्थायी निवास के अवसर भी ढूँढ़ती है। ऐसा प्रेम-सजग कवियों की कविता में संभव होता है- वे प्रेम को 'स्थायी कविसमय' बना देते हैं। 'प्रेम सदियों से स्थायी कविसमय रहा है'- जब कवि अशोक वाजपेयी ऐसा कह रहे होते हैं तो उनका संकेतार्थ यही होता है कि भारत में दीर्घ-काल से प्रेम और शृंगार-काव्य की परंपरा प्रवाहमान रही है जो प्रेम और शृंगार की देह-रहित वाणी को अपनी काया और अभिव्यक्ति का आश्रय देती आई है। प्राचीन संस्कृत और मध्ययुगीन रीतिकाव्य प्रेम और शृंगार-संवेदना का सशक्त वाहक रहा है।

रति प्रेम का एक महत्त्वपूर्ण रूपक है। संस्कृत और हिंदी रीतिकाव्य में भी प्रेम के संदर्भ में शृंगार के साथ-साथ रति की प्रधानता रही है। संस्कृत काव्य में कई बार प्रेम, शृंगार और रति का संबंध देह के समानांतर लोकोत्तर अध्यात्म से जोड़कर

देखने का आग्रह काम करता रहा है। लेकिन अधिकांश मामलों में कतिपय आलोचकों का अतिपाठ है। जैसे जयदेव की 'गीत गोविन्द' जैसी विशुद्ध दैहिक प्रेम और शृंगारपरक रचना में लोकोत्तर अध्यात्म ढूँढ़ना उसके अतिपाठ का एक उदाहरण है।

रीतिकालीन शृंगारपरक कविताओं ने राधा-कृष्ण को उनके दैवीय पाठ से अपसरित कर उन्हें साधारण मानवीय पाठ में स्थापित कर दिया। वस्तुतः रीतिकालीन कविता में नायक-नायिका की प्रेम-लीला देह की लीला थी। हिंदी कविता में 'देह' को 'आदर' देने का यह पहला प्रयास था। स्त्री-देह को कामना से देखने की यह पहली दृष्टि थी। स्त्री-देह और प्रेम को लेकर सारी वर्जनाएँ एक साथ चरमराकर ढह गईं। प्रेम को लेकर एक समाज, जो भयावह रूप से पिछड़ा और रूढ़िग्रस्त था, रिति कविता ने समाज के उस पिछड़ेपन और रूढ़िग्रस्तता पर कड़ा प्रहार किया और उसी समाज में जहाँ स्त्री-देह अत्यंत गोपनीय और रहस्य की वस्तु थी, रिति कविता ने उसे अनावृत कर उसके रहस्य को भेद दिया।

लेकिन जहाँ रिति कविता ने स्त्री-देह और प्रेम को लेकर अपना एक कदम परिवर्तन की ओर बढ़ाया था, वहीं उसका दूसरा कदम मूलगामिता पर टिका था। उसके द्वारा उन्मुक्त कर दी गई स्त्री-देह अब 'वासना' और 'भोग' का पर्याय बन गई थी। स्त्री-देह और उसका प्रेम सामाजिक वर्जनाओं से मुक्त होकर गरिमामय होने की प्रक्रिया में था, कि उसकी देह और प्रेम के 'भोगवादी पाठ' ने उस प्रक्रिया को उसके प्रारंभ में ही स्थगित कर दिया। इस तरह स्त्री-देह और प्रेम का अपसरण वासना और भोग के तल पर हो गया। इस काव्य की परिवर्तनकामिता मूलगामिता पर ही ठहर गई।

आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम को पर्याप्त महत्त्व और उचित स्थान नहीं मिल पाया। आधुनिक काल का प्रारंभिक भाग द्विवेदीयुगीन नैतिकता की भेंट चढ़ गया, तो एक बड़ा हिस्सा प्रगतिशीलता के हो-हल्ले में घिस गया और साठोत्तरी समय स्त्री-देह और प्रेम को जुगुप्सित साधना बनाने में बीता।

रहा छायावादी कवियों का प्रेम, तो वह ज्यादातर प्लेटोनिक साबित हुआ। प्रयोग और नई कवितावादियों में प्रेम की संवेदना कुछ अलग रूप में सामने आई। उनके पास प्रेम की कुछ सुंदर कविताएँ भी थीं। अशोक वाजपेयी की पीढ़ी के कतिपय कवियों की प्रेम कविताओं की बात करें तो वहाँ भी प्रेम की अनेक सुन्दर छवियाँ थीं, लेकिन प्रेम की अधिकांश 'व्यवस्थित दुनिया' प्रेम की विशुद्ध श्रृंगारिक संवेदना के विरुद्ध रही है और इसमें स्त्री-देह और प्रेम का सार्थक पुनर्वास नहीं है। प्रेम और श्रृंगार की वे अनुगुंजें नहीं हैं जो हमें दाय में प्राचीन कविता से प्राप्त हैं।

अशोक वाजपेयी ने एक ऐसे समय में प्रेम और श्रृंगार को अपनी कविता का स्थायी विषय बनाया, जब प्रेम और श्रृंगार न केवल हिंदी कविता में उपेक्षित थे, बल्कि सामाजिक समय में भी प्रेम की आभा क्षीणतर होती जा रही थी। सामाजिक समय में भी प्रेम या तो उच्छृंखलता, लंपटपन और विलास का पर्याय है या मौन उदासीनता का प्रसंग। समकालीन हिंदी कविता में अशोक वाजपेयी का प्रेम-कविता-प्रसंग हाशिए का प्रसंग है। समकालीन हिंदी कविता में रति और श्रृंगार-संवेदना की उत्कृष्ट कविताएँ तो अत्यंत दुर्लभ हैं।

अशोक वाजपेयी ने अपनी कविता में प्रेम, रति, श्रृंगार जैसी बहुमूल्य मानवीय संवेदनाओं का सार्थक पुनर्वास किया है। इन संवेदनाओं को परंपरागत रूप में आयत्त करने के लिए वे रीतिकालीन काव्य और प्राचीन संस्कृत काव्य तक पीछे गए हैं। उन्होंने कालिदास से लेकर जयदेव और विद्यापति से लेकर बिहारी और देव तक, सबको पढ़ा है। उनकी प्रेम और श्रृंगार परंपरा का प्रभाव इनकी प्रेम कविताओं पर पड़ा है। अशोक की कविता एक स्तर पर परंपरा को याद करती है तो दूसरे स्तर पर परंपरा के शब्दों को याद करती है। उनकी प्रेम कविता के शब्द अपनी परंपरा से ताकत पाते हैं। वे उसकी प्रतिध्वनियों को सुनते हैं और उससे जीवनदाय ग्रहण करते हैं। तभी अशोक लिखते हैं, "कविता में याद करना, एक स्तर पर, शब्दों का शब्दों को याद करना है। यह शब्दों की आत्मरति नहीं, आत्मविस्तार है। मेरी कविता में अवतरित हो रहा प्रेम पहले विन्यस्त प्रेम को पुकारता है, तभी एक ही कविता में मेरे शब्द, कालिदास की एक उक्ति और देव की एक छवि ऐसे गुंथ जाते हैं कि उन्हें अलगाना आसान नहीं है। पर उसमें प्रेम की जो अर्थ-सघनता संभव होती है, वह इस शब्द-स्मृति के बिना न तो हो सकती थी और न ही समझी जा सकती थी। कविताएँ स्मृतियों का एक काँपता हुआ अंतरिक्ष है।"

परंपरा के शब्दों, अर्थों और प्रतिध्वनियों से विन्यस्त अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताएँ सांस्कृतिक उत्तराधिकार को

विनम्र होकर स्वीकार करती हैं और स्वयं में उनके होने को सुनिश्चित करती हैं। अशोक वाजपेयी की प्रेम कविता ऐकांतिक कविता है, लेकिन अपनी ऐकांतिकता में ही वह प्रतिरोध की भी कविता है, यानी दृश्य पर जो हावी है, उसके प्रतिरोध की कविता। इस अर्थ में एक प्रेम-विरुद्ध समय में प्रेम कविता लिखकर उसका पुनर्वास करना अशोक जी का 'रेडिकल' कर्म है। अशोक अपनी प्रेम कविता के इस रेडिकलिज्म को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "एक ऐसे समय में जब सब लोग तथाकथित व्यापक सामाजिक सच्चाई के कवि हैं और उसी के होने में उनकी सिद्धि और सार्थकता मानी जाती है, एक ऐसे समय में जब मसलन देह जो है, वह सर्वथा अलक्षित की जा रही है, मानो भारतीय परंपरा में देह और श्रृंगार का इतना बड़ा प्रचलन न रहा हो। ऐसे समय में जब मसलन ऐसा लिखा जा रहा है मानो हिंदी समाज में या हिंदी के मनुष्य में सैक्सुअलिटी होती ही नहीं है और एक तरह के निर्विकार, तपस्वी लोगों का जगत है। ऐसे में देह की बात करना वैचारिक हस्तक्षेप नहीं है?"

अपनी प्रेम कविता में देह, रति और श्रृंगार के पुनर्वास को अपने तर्क एक रेडिकल काम मानने के उनके आग्रह के कारण नामवर सिंह उन्हें 'देह और गेह का कवि' कहते हैं और विचार नाम का कोई तत्त्व उनकी कविता में नहीं पाते। सुधीश पचौरी से एक बातचीत में ('मेरे साक्षात्कार' में संकलित) अशोक पुनः अपना प्रश्न दोहराते हैं कि देह-अलक्षित समय में देह की बात करना क्या अपने-आप में वैचारिक हस्तक्षेप या काम नहीं है?

अशोक की प्रेम कविताओं में देह की मौजूदगी सर्वाधिक है- वे दैहिक सौंदर्य की आभा से आलोकित हैं। एक स्थान पर अशोक ने समाज द्वारा देह और प्रेम को अलक्षित किए जाने का एक कारण उस पर तथाकथित व्यापक सामाजिक सच्चाई का हावी होना बताया है। अशोक का कवि इस सामाजिक सच्चाई के समानांतर सच्चाई का दूसरा पक्ष प्रस्तुत करना चाहता है। एकमात्र सामाजिक काया के बरक्स प्रेम की काया का पक्ष भी सामने रखना चाहता है। ओम निश्चल को दिए गए एक साक्षात्कार में वे कहते हैं, "एक ऐसे समय में जब देह की इतनी अवज्ञा हो रही हो, देह को लगभग गायब कर दिया गया हो- बिल्कुल सामाजिक काया में सारी देहें पर्यवसित कर दी गई हैं जैसे कि सिर्फ वही देह बची है, मेरी कविता एक दूसरा पक्ष प्रस्तुत करने की चेष्टा करती है। ....मेरे यहाँ देह है और प्रेम के और सारे पक्ष भी हैं।"

प्रेम के अनगिन पक्षों की तरह अशोक के यहाँ 'देह' के भी अनेक पक्ष हैं। अशोक देह की प्रस्तुति सामाजिक के बरक्स

वैयक्तिक काया के रूप में करते ही हैं, लेकिन इस 'देह' का एक पक्ष और भी है। यह देह प्रेम में पड़ी कोई हाड़-मांस की वास्तविक देह नहीं है। इस देह के निहितार्थ कुछ और भी हैं। आलोचक मदन सोनी अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं में मौजूद इस 'देह' को कविता की भाषागम्य देह मानते हैं। आलोचक मदन सोनी इन कविताओं के वास्तविक नायक की खोज करते हुए कविताओं में व्यक्त 'देह' का पुनर्पाठ करते हैं। सोनी लिखते हैं, "अपनी शब्द-स्पृहा और प्राकृतिक-स्पृहा में प्रतिबिंबित होता यह एक कवि है जो इन कविताओं में वास्तविक नायक है और जिस तरह यह नायक एक जैविक सत्ता होने की बजाय एक आनुभविक सत्ता है और उसी तरह नायक की रति का आलंबन भी इन कविताओं में कोई नारी-देह या कि कोई मानवीय देह नहीं है; इसके विपरीत वह एक कृत, एक गढ़ी गई, एक ज्ञानात्मक और आनुभविक देह है; वह 'कविता' है- एक भाषागम्य देह। वह 'वह' नहीं है, 'शब्द' है, जिसे 'उसकी जगह' रखा गया है।"

अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं में मौजूद 'देह' को देखने का मदन सोनी का नज़रिया अपने-आप में अनूठा और मौलिक है। लेकिन अशोक की कविताओं में व्यक्त 'देह' के 'अभिधार्थ' का पीछा जड़बुद्धि आलोचकों ने नहीं छोड़ा है। उसे लगातार एक हेय और अश्लील अर्थ में व्याख्यायित किया जाता है। खैर, उनका अपना देह-विचार!

देह-प्रमुख प्रेम कविताओं की वजह से अशोक वाजपेयी को सुखवादी, आनंदवादी और उत्सवधर्मी कवि माना गया है। लेकिन अशोक का मानना है कि जिस समाज में देह सिर्फ उपभोग से अर्थ पाती है, उसकी सुंदरता आस्वादन मात्र के लिए है, इनके बरक्स अगर प्रेम और रति में उच्छ्वसित और उल्लसित देह कविता के केंद्र में लाई जाती है तो यह वास्तव में उसकी बुनियादी मानवीयता का पुनर्वास करने की चेष्टा है। अशोक जी के अनुसार "यह कार्य अपने-आप में सामाजिक है। ....यह भारतीय शृंगार परंपरा की एक महान् परंपरा को आधुनिक समय में फिर से सहेजने की चेष्टा भी है। यह सहेजना भी अपने उत्तराधिकार और इतिहास के संदर्भ में, एक सामाजिक काम है।"

यह 'सामाजिक काम' अगर सतह पर यानी अशोक की प्रेम कविताओं में स्पष्ट तौर पर नहीं दिखाई पड़ता तो उनका तर्क यह है कि "कविता के सामाजिक अर्थ जरूरी नहीं कि कविता में साफ-साफ बयान कर दिए जाएं। वे अंतर्भूत हो सकते हैं।"

अशोक अपनी प्रेम कविताओं की उत्सवधर्मिता को सहरष स्वीकार करते हैं। उत्सवधर्मिता का मूल रागात्मकता में

है। अशोक अपने पहले संग्रह की कविताओं में से ही रागात्मकता का प्रस्फुटन मानते हैं। आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता रागात्मकता को विशेष स्वीकृति नहीं देती, पर अशोक इसकी चिन्ता नहीं करते और राग से कविताएँ लिखते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि "बिना राग के हमारे समय के अनेक मूर्धन्य आधुनिक और उत्तर-आधुनिक कवि और कविताएँ संभव ही नहीं थे।"

उत्सवधर्मिता और रागात्मकता का संबंध शृंगार से रहा है। अशोक वाजपेयी अपनी प्रेम कविताओं में जिस शृंगार-संवेदना के बल-बूते उत्सवधर्मिता और रागात्मकता का पुनराख्यान करते हैं- उस शृंगार की एक लंबी परंपरा भारत में रही है और जिसे पश्चिम से आयत्त और उससे आक्रांत छद्म आधुनिकता ने उपेक्षित किया है; अशोक ने भारतीय उत्तराधिकार को स्वीकार कर रति और शृंगार को एक प्रतिशोध के रूप में पुनराविष्कृत करने की चेष्टा की है। इस प्रकार अशोक हिंदी में रागात्मक शृंगारिकता के सच्चे उत्तराधिकारी प्रेम-कवि हैं। उनकी प्रेम कविताओं की शृंगारिक रागात्मकता की बुनियाद आधुनिक भारतीय के अंतरंग इंद्रिय-बोध पर स्थापित है। प्रेम का राग, उत्सव और शृंगार व्यक्ति की ऐंद्रिय संवेदना की तीव्रता पर निर्भर करता है। अशोक जी ने प्रेम, शृंगार और राग का भारतीय काव्य-परंपरा से पुनराविष्कार कर व्यक्ति की अंतरंग ऐंद्रिय संवेदना को स्फुरित किया है। यह ऐंद्रिय संवेदना कुछ अर्थों में आदिम है। यह आदिम ऐंद्रिकता मनुष्य की जिजीविषा से संबद्ध है। यह जिजीविषा प्रेम में प्रेम का, प्रकृति का, जीवन का और होने का असमाप्य उत्सव मनाती है।

अशोक की प्रेम कविताओं में प्रेम का रूपक रति है और रति प्रेम की जिजीविषा और आसक्ति का रूपक है। अशोक ने प्रेम, रति, राग, शृंगार के बहाने मनुष्य की जिजीविषा का, आसक्ति का आख्यान किया है। प्रेम, रति, राग, शृंगार सब इसी का पर्याय है। अशोक वाजपेयी स्वयं को प्रेम से पहले जीवनासक्ति का कवि मानते हैं। वे कहते हैं, "असल में मैं जीवनासक्ति का कवि हूँ, मैं जिजीविषा का कवि हूँ। यह एक ऐसा समय है जिसमें जीवन को संकुचित करने, उसे रोकने-प्रभावित करने के सारे दैत्याकार उपकरण हमीं ने विकसित किए हैं। ऐसे समय में जीने की इच्छा का जो आग्रह है, मैं उसका कवि हूँ। अगर रति प्रेम का रूपक है तो रति इस आसक्ति का भी रूपक है। वह अंततः जिजीविषा का रूपक है।"

अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताएँ न तो रूमानी हैं, न एकाग्र रूप से माँसल। रूमानी या हवाई नहीं कि वे लिजलिजी भावुकता की शिकार कविताएँ नहीं हैं। रही माँसलता की बात,



तो 'रति' का तीव्र आग्रह और 'देह' की अतिशय मौजूदगी भी उसे मांसल और अश्लील नहीं होने देती। इसका सबसे बड़ा कारण इन कविताओं की तत्सम-प्रधान शब्दावली, भाषा का आभिजात्य और उसका अचूक संतुलन है। भाषा के आभिजात्य धर्मी संतुलन की वजह से एक ओर जहाँ उनकी प्रेम कविताएँ गलदश्रु भावुकता से युक्त रूमानी कविताएँ होने से बच जाती हैं, वहीं दूसरी ओर उनकी अत्यंत खतरनाक शृंगारिक प्रेम कविताएँ 'पोर्नोग्राफी' की श्रेणी में डाली जाने से बच जाती हैं। देखा जाय तो इस 'भाषिक संतुलन' के जरिए अशोक ने एक ऐसी अभूतपूर्व प्रेम-संवेदना को अपनी कविताओं में डाला है जो छायावादी रूमानी प्रेम और उत्तर छायावादी मांसल प्रेम का दुःसाध्य रासायनिक संयोजन है।

इस भाषिक सामर्थ्य के अतिरिक्त इन कविताओं को पहचान देने वाला दूसरा तत्त्व इनमें प्रकृति की उपस्थिति है। मदन सोनी इन कविताओं में प्रकृति के विन्यास के संबंध में लिखते हैं, "प्रकृति इन कविताओं में सर्वव्याप्त है; वह इन कविताओं का रंगपटल या घटना-स्थल नहीं, स्वयं एक आख्यान, एक घटना है। वह उपस्थित है- एक बहुवर्णी और क्रियाशील उपस्थिति, एक स्वायत्त और सौंदर्यपूर्ण उपस्थिति।"

मदन सोनी के वक्तव्य को जरा खोलकर कहें तो प्रकृति वहाँ लीलामय उपस्थिति है। अपनी लीलामय चेतना के कारण ही वह स्वयं एक आख्यान, घटना है। -'एक बहुवर्णी', 'क्रियाशील' और 'सौंदर्यपूर्ण उपस्थिति' भी।

अशोक वाजपेयी के सभी कविता संग्रहों में बड़ी संख्या में प्रेम कविताएँ शामिल हैं। उनके महत्त्वपूर्ण पाँच कविता संग्रहों की प्रेम कविताओं को एकत्र कर 'थोड़ी-सी जगह' शीर्षक से एक कविता संचयन प्रकाशित है। इस संचयन में एकत्र कविताओं को अशोक वाजपेयी की प्रतिनिधि प्रेम कविताएँ माना जा सकता है। इन कविताओं के बारे में अशोक से सहमत होते हुए कहा जा सकता है कि 'थोड़ी-सी जगह' में शामिल प्रेम कविताएँ हमारी तथाकथित सामाजिक सच्चाई के बरक्स मनुष्य के निजी अंतरंग का सुरक्षित कोना है।

इस संचयन की कुछ कविताओं पर संक्षिप्त दृष्टिपात करना प्रासंगिक होगा।

'आत्मा शरीर का अनंत स्वप्न' कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं, "जब तक तुम साधे हो उसके शरीर को/तभी तक/उसकी आत्मा भी तुमसे अटूट है/आत्मा शरीर का अनंत स्वप्न देखती है।"

इस कविता में अशोक की प्रेम कविताओं का वह सूत्र मिलता है, जिसे 'देह के सूत्र' के रूप में हम पहले ही विवेचित कर आए हैं। यह पूरी कविता प्लेटोनिक दिव्यता के विरुद्ध

लौकिकता और काया की महत्ता को संपुष्ट करती है। यहाँ अदृश्य आत्मा प्राथमिक नहीं है, दृश्य देह प्राथमिक है। आत्मा को अपनी सार्थकता के लिए देह का अनिवार्य आश्रय चाहिए। देह अपनी पार्थिव उपस्थिति में भी गरिमाय और जीवंत है।

देह-रस से सिक्त कविताओं में एक है : 'सद्यःस्नाता'। -"पानी/छूता है उसे/उसकी त्वचा के उजास को/उसके अंगों की प्रभा को-/पानी/उसे घेरता है/चूमता है/पानी सकुचाता/लजाता-गरमाता है/पानी बावरा हो जाता है।" इस कविता में नायिका की देह से पानी का संस्पर्श ऐसे है जैसे नायक-देह का संस्पर्श। पानी के साथ इस कविता में देह की केलि-क्रीड़ा द्रष्टव्य है। केलि का उल्लास, हर्ष और उछाह देह को आतुर कर देता है। यह देह की लौकिक लीला है, लौकिक धरातल पर, लौकिक प्रकृति के साथ।

देह-आधारित अशोक की प्रेम कविताओं का एक प्रमुख पक्ष रति है; जैसा कि ऊपर की कविता में भी संकेतित है। रति का संबंध शृंगार से है और कामना से भी। अशोक की ऐसी रति-विषयक कविताएँ कामना को तीव्र रूप से उद्दीप्त करती हैं; लेकिन रति में प्रकृति का साहचर्य और अपने भाषिक संतुलन के कारण वे अश्लील होने से बच जाती हैं- "मैं बिछाता हूँ धरती का हरा बिछौना/मैं खींचता हूँ आकाश की नीली चादर/मैं सूर्य और चंद्रमा के दो तकिए संभालता हूँ/ मैं घास के कपड़े हटाता हूँ/मैं तुमसे केलि करता हूँ।"

रति-विषयक एक और कविता का उल्लेख ज़रूरी लगता है, जो अत्यंत उत्तेजक प्रतीत होती है, लेकिन प्राकृतिक उपादानों को लालित्यपूर्ण ढंग से अपनी अभिव्यक्ति में मध्यस्थ बनाकर कवि इस कविता को अद्वैतिक ही नहीं बना देता, बल्कि एक अलौकिक आवरण से भी ढंक देता है। पूरी कविता है- "वह दिगंबरा आकाश की शैया पर/उसकी कंचुकी उतारकर/ले गया है चन्द्रमा/उसका अधोवस्त्र हर ले गया सूर्य/उसके अनावृत उरोज/दिपते हैं ताराओं से/उसे लेता है/हरी दूब की सौंधी गन्ध से/महकता अंधेरा/उसे बेधता है/ताजे दूध की तरह धारोषण आलोक।"

अशोक की प्रेम कविता में केवल देह ही केलि या रति-मग्न नहीं होती, शब्द और प्रकृति सहित समूचा ब्रह्माण्ड केलि-मग्न होता है। सब ओर लीला अहर्निश है। अशोक वाजपेयी की अधिसंख्य प्रेम कविताएँ रति और केलि-वर्णन से दूर हैं। ऐसी कविताओं में एक 'साफ-सुथरापन' दिखता है। 'प्रेम के रूपक' कविता में वे पूरी प्रकृति को प्रेम के रूपक के रूप में प्रस्तावित करते हैं। उन्हें हरियाली पर पहली ओस से लेकर ज्वलंत सूर्य की लालिमा तक में प्रेम का रूपक नज़र आता है। एक दूसरी कविता 'सुख का प्रस्ताव' में वे निजी,

अंतरंग सुख का प्रस्ताव करते हैं। यह सुख उस 'सामाजिक सच्चाई' के हो-हल्ले से दूर व्यक्ति का अपना निज का सुख है, जिसमें वैयक्तिक प्रेम की गरिमा सुरक्षित है। जाहिर है कि प्रेम के लिए अब सामाजिक जीवन में कम ही जगह बची है। काव्य-नायक उस 'झुरमुट' वाली, 'गोधूलि' वाली, 'अस्फुट गान' वाली, 'अनंत के पड़ोस' वाली, 'उस थोड़ी-सी जगह में' अपने प्रेम को पाना चाहता है और कभी-कभी तो वह 'थोड़ी-सी जगह' जो कि पूरी पृथ्वी है, प्रेम के लिए कम पड़ जाती है- "जरा-सी जगह ही थी/प्रेम के लिए/पूरी की पूरी पृथ्वी।"

काव्य-नायक प्रेम में समूचा ब्रह्माण्ड अंजलि में उठाता है। अपने प्रेम का प्रसार वह समयातीत और इतिहास से परे भी करता है। समग्र अस्तित्व उसके प्रेम के दायरे में हैं- "मैं अपनी अंजलि में उठाता हूँ पूरा संसार/असंख्य देवता, वनस्पतियाँ, नक्षत्र/झरने में डूबी चट्टानें/अक्षांश और दसवीं शताब्दी-पक्षियों में बदल गए पूर्वज/अनसुनी वंदना, बचपन में/चोरी से जमा पत्थरों-बीजों के ढेर।"

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि काव्य-नायक के प्रेम का आलंबन कोई स्त्री-देह नहीं, बल्कि स्वयं भाषा की देह कविता है। कविता-कामिनी के प्रति कवि के प्रेम, उल्लास और उछाह का अतिरेक-कवि को काव्य-संवेदना के एक छोर से दूसरे छोर के बीच डोलायमान रखता है। प्रेम में वियोग, प्रतीक्षा, स्मृति, खोज-पुकार कवि को दूसरे रूपकों की ओर ले जाते हैं, जो कवि के काव्य-स्वभाव का अंग है। यह काव्य-स्वभाव है- अवसाद, अवसन्न विकलता और शोक आदि। एक प्रकार से अशोक की प्रेम कविताएँ उन्हें श्रृंगार से शोक की ओर ले जाती हैं। ध्रुव शुक्ल कहते हैं, "न जाने क्यों हमारे समय के आलोचकों को अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताएँ लौकिक रति की ही जान पड़ती हैं। जबकि ये कविताएँ अलौकिक का स्पर्श कराती हैं और नश्वरता के गहरे बोध से भरती हैं। वे हमें राग-विराग का पड़ोसी हो सकने का गुर सिखाती हैं। वे करुणा से भरी कविताएँ हैं।"

अशोक वाजपेयी इस तथ्य पर मुहर लगाते हैं। वे खुद को एक साथ राग-विराग और जीवन-मृत्यु का कवि बताते हैं। उनके लिए प्रेम और मृत्यु दोनों एक ही जीवन के दो पक्ष हैं। प्रेम में जीवन और मृत्यु एक साथ मिल जाएंगे। अशोक लिखते हैं, "प्रेम राग के बिना भी संभव नहीं है, लेकिन विराग के बिना भी संभव नहीं है।... प्रेम में ये दोनों अनुभव मिल जाएंगे। ...

एक तरफ रति, दूसरी तरफ मृत्यु, एक तरह अनंतता, दूसरी तरफ नश्वरता प्रेम में ही संभव है।"

अशोक वाजपेयी ने प्रेम और मृत्यु के बीच के समय को अपनी जगह के रूप में तलाशने की कोशिश की है। इस कोशिश में उनकी प्रेम कविताएँ समय का अतिक्रमण भी करती हैं। अशोक खुद भी मानते हैं कि उनकी "प्रेम कविताएँ समय का अतिक्रमण कर आसक्ति, मोह, ऐंद्रिकता और रति को, संबंधों की ऊष्मा और आभा को समयातीत में ले जाती हैं।"

समय से समयातीत की यात्रा करती अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताएँ कई मायनों में दूसरों की प्रेम कविताओं से अलग और विशिष्ट हैं। खुद अशोक अपनी प्रेम कविताओं की खासियत गिनाते हैं। परितोष कुमार मणि के एक प्रश्न कि उनकी प्रेम कविताएँ दूसरों की प्रेम कविताओं से किन अर्थों में अलग और विशिष्ट हैं; अशोक वाजपेयी गिनाते हैं- "एक तो रति-भाव के आग्रह में, दूसरे बखान की संकोचहीनता में और प्रेम के लिए कठिन, लगभग प्रेम-विमुख समय में, प्रेम के इतने लंबे 'सेलीब्रेशन' के अर्थ में।" जब उनसे यह पूछा गया कि आप प्रेम कविता क्यों लिखते हैं, तो उन्होंने जवाब दिया, क्योंकि मैं शब्द, कविता और जीवन से प्रेम करता हूँ।

#### सहायक ग्रंथ-

1. थोड़ी-सी जगह, अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
2. पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
3. मेरे साक्षात्कार, अशोक वाजपेयी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
4. उत्प्रेक्षा, मदन सोनी, सूर्य प्रकाशन मंदिर, 2007
5. ध्रुव शुक्ल की ईक्षा, ध्रुव शुक्ल, सूर्य प्रकाशन मंदिर, 2006
6. अशोक वाजपेयी : पाठ-कुपाठ, संपादक-सुधीश पचौरी, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
7. साक्षात्कार (जनवरी-मार्च 1995) : संपादक : प्रभात त्रिपाठी, मध्य प्रदेश साहित्य परिषद्

संपादन सहायक, अनुसंधान एवं भाषा विकास विभाग  
केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा - 282005 (उ.प्र.)

# हिंदी कथा : उद्भव, परिभाषा एवं स्वरूप

यशपाल सिंह रावत

‘कथा’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘कथ्’ धातु से हुई है, जिसका साधारण अर्थ-‘वह जो कहा जाए’ लिया जा सकता है। ‘कथा’ किसी वस्तु, स्थान, परिवेश, पशु-पक्षी तथा व्यक्ति-विशेष आदि से संबंधित तो हो सकती है, लेकिन ‘कथा’ का भी अपना एक निश्चित स्वरूप होता है, जिसमें पात्रों, घटनाओं व परिस्थितियों का इतिवृत्तात्मक वर्णन करते हुए अंत में अर्थपूर्ण प्रभाव पैदा होता है। हिंदी साहित्य-कोश के अनुसार- “कथा का विशिष्ट अर्थ हो गया है, किसी ऐसी घटना का कहना, वर्णन करना जिसका निश्चित परिणाम हो।”<sup>1</sup>

संस्कृत-हिंदी शब्द कोश के अनुसार-“कथा (कथ् + अङ् + टाप्) 1. कथा, कहानी, 2. कल्पित या मनगढ़ंत कहानी कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते-हि<sup>0</sup>, 3. वृत्तांत, संदर्भ, उल्लेख-कथापि खलु पापानां लमश्रेयसे यतः-शि<sup>0</sup> 2/40 4. बातचीत, वार्तालाप, वक्तृता 5. गद्यमयी रचना का एक भेद जो आख्यायिका से भिन्न है- (प्रबंध-कल्पना स्तोकसत्यां प्राज्ञाः कथा विदुः, परंपराश्रया या स्यात् सा मताख्यायिका बुधैः) ‘आख्यायिका’...का कथा या प्रति पूर्वक कथा (कथा कहना) ‘क्या कहने की आवश्यकता है’ ‘कहना नहीं’ ‘कुछ नहीं कहना’ ‘और कितना अधिक’ ‘और कितना कम’ आदि अर्थों को प्रकट करते हैं।”<sup>2</sup>

आधुनिक साहित्य में, कथा-साहित्य का प्रयोग अंग्रेजी के ‘फिक्शन’ (Fiction) शब्द के अर्थ में होता है-(Literary works invented by the imagination, such as novels or short stories)<sup>3</sup>

भारतेंदु-युग गद्य-साहित्य के उद्भव का युग है। हिंदी की प्रतिष्ठा एवं स्वीकारोक्ति के लिए विभिन्न विधाओं-नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना के उद्भव का ऐतिहासिक कार्य इसी युग में हुआ। जनजागरण के माध्यम से फारसी के स्थान पर हिंदी की अस्मिता को बचाए रखने के लिए आवश्यक कदम उठाए गये। आरम्भिक गद्य-लेखक राजा लक्ष्मण सिंह ने विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिंदी तथा राजाशिव प्रसाद सितारे हिंद ने

हिंदी को उर्दू-ए-मुअल्ला का जामा पहनाया। लेकिन हिंदी का स्वरूप बदलने के साथ-साथ भारतेंदु युग में हिंदी अतिवादिता से मुक्त होकर इन दो छोरों के मध्य अवस्थित हुई, जिसमें न तो संस्कृतनिष्ठ शब्दों की भरमार थी और न उर्दू के शब्दों की बहुलता। हिंदी अपेक्षाकृत आसान हुई।

प्राचीन काल से ही भारत में लोक कथाओं को मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तारित करने की परंपरा रही है। आधुनिक काल में मुद्रण यंत्र का तीव्र गति से प्रचार-प्रसार के कारण मध्यवर्ग पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। गोपालराय के अनुसार नाटक व प्रबंध काव्य में कथातत्त्व का प्रयोग कमोबेश होता रहा है, धीरे-धीरे आगे चलकर कथातत्त्व का भरपूर प्रयोग कहानी और उपन्यास में हुआ। ‘भारत में प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग तीसरे चरण तक ‘कथा’ का प्रयोग प्रबंध-काव्य और नाटक में गौण तत्त्व के रूप में होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी में, भारत में, मुद्रणयंत्र के प्रवेश के बाद ‘कथा’ न केवल बाल बुद्धि के मनोविनोद के लिए पुस्तक का रूप ग्रहण करने लगी, वरन् वह लेखक के विचारों, भावों और नैतिक बोध की अभिव्यक्ति का साधन भी बनने लगी। हिंदी की देवरानी जेठानी की कहानी, भाग्यवती, परीक्षागुरु, चंद्रकांता आदि पुस्तकें इसकी प्रमाण हैं। कथा के इन्हीं रूपों से हिंदी में ‘उपन्यास’ और ‘कहानी’ का विकास हुआ।”<sup>4</sup> निस्संदेह विचारों, भावों को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया में लेखक ने कथा को साधन के रूप में अपनाया है।

कहानी विधा के अंतर्गत लघुकथा और लंबी कहानी के जिक्र को नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता। तात्विक दृष्टि से एक होते हुए भी तीनों का शिल्प, स्वरूप और प्रभाव बिल्कुल भिन्न है। यानी तीनों के रचना-विधान का आविर्भाव में पर्याप्त अंतर है।

‘लघु कथा’ शब्द अंग्रेजी के ‘शार्ट स्टोरी’ का हिंदी अनुवाद है। शार्ट स्टोरी का अर्थ कहानी से भी लिया जाता है।

कहानी व लघु कथा में तत्त्व तो समान रहते हैं, लेकिन इन दोनों विधाओं का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। लघु कथाओं की परंपरा अत्यंत प्राचीन है और प्रारंभ में ये मुख्यतः धार्मिकता और नैतिकता से जुड़ी हैं। उदाहरण के लिए पंचतंत्र की कथाएँ, महाभारत, बाइबिल, जातक आदि की कथाएँ। लघुकथा स्वयं में एक सर्वथा स्वतंत्र विधा है। लघु कथा से जो अर्थ लिया जाता है, वह इस प्रकार है-‘लघुकथा’ कहानी को सगोत्रीय विधा होने पर भी अपनी निजता, अपने तत्त्वों और अपनी प्रभाव क्षमता में उससे भिन्न है। समकालीन जीवन की विसंगतियों से जन्मी इस तीखे प्रभाव वाली विधा का मूल स्वर व्यंग्य का होता है। इसमें किसी एक संवेदना का घनीभूत रूप इस प्रकार सामने लाया जाता है कि पढ़ने की चेतना झनझना उठे। इसमें विस्तार नहीं होता न वातावरण की सृष्टि का अवकाश और न पात्रों का अजायबघर। जीवन-जगत की किसी एक समस्या, किसी एक विसंगति, किसी एक मानव विरोधी कृत्य को प्रस्तुत किया जाता है, जिसकी तह में पूरी सामाजिक विडम्बना दबी रहती है। इसका अंत एकदम उद्वेलित, विचलित कर देने वाला होता है। इसे हमने एक स्वतंत्र विधा मानकर मुक्त कथाविधा कहा है।<sup>15</sup> मगर गोपालराय का कहना है- “1900 के पूर्व शाब्दिक अर्थ में भी, लघु कथाओं के प्रकाशन की कोई उल्लेखनीय परंपरा नहीं थी।”<sup>16</sup>

लघु कथा, कहानी की सजातीय होते हुए भी भिन्न है। वर्तमान में गद्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा लघु कथा-लेखन कम हो रहा है-‘फिर भी रामनारायण उपाध्याय कृत ‘नाक का सवाल’ (1983) और हरिशंकर परसाई रचित लघुकथाओं के संग्रह ‘रचनावली’ (1985) के प्रकाशन से यह विधा समृद्ध हुई है। रामनारायण उपाध्याय ने व्यंग्यात्मक शैली में लघुकथा-चित्रों के माध्यम से सामाजिक-नैतिक अवमूल्यन का पर्दाफाश किया है। परसाई तो व्यंग्यात्मक लघुकथा लेखन में बेजोड़ हैं वे जीवन के किसी संदर्भ विशेष को लेकर व्यंग्य-कथा के माध्यम से समाज के यथार्थ का प्रामाणिक चित्र अंकित कर देते हैं। परंपरागत लोककथा शैली में भी वे व्यंग्य-कथा लिखने में माहिर हैं। अपनी व्यंग्यात्मक लघुकथाओं में उन्होंने कभी-कभी डायरी शैली का भी प्रयोग किया है। विष्णु प्रभाकर ने भी कुछ लघुकथाएँ लिखी हैं। उनकी कथाएँ नैतिक भावबोध की कथाएँ कही जा सकती हैं।<sup>17</sup>

लंबी कहानी का आविर्भाव जटिल होते जीवन को गहराई से दिखाने व लिखने की आवश्यकता के कारण हुआ। लंबी कहानी में किसी मनोभाव, घटना, अंतर्द्वन्द्व या परिवेश का गहराई, सघनता और विस्तार से चित्रण होता है और उसे कई कोणों से चित्रित करने का पर्याप्त अवसर होता है। लंबी

कहानी का आविर्भाव, कहानी (शॉर्ट स्टोरी) के काफी बाद में हुआ है। जैसा कि लंबी कहानी तथा कहानी के विषय में गोपालराय का कहना है- “कहानी और लंबी कहानी की शिनाख्त करने का भी एक आसान नुस्खा निश्चित किया जा सकता है। आकार की दृष्टि से ‘लंबी कहानी’ की अधिकतम शब्द-संख्या 15,000 और निम्नतम शब्द-संख्या 4,000 के आसपास हो सकती है। प्रकृति की दृष्टि से कहानी में कथा के दिक् और काल के आयाम में विकास के लिए गुंजाइश नहीं होती। एक अच्छी कहानी में संवेदना या तनाव का कोई एक क्षण ही चित्रणीय होता है, यद्यपि उसके इर्द-गिर्द किसी एक पात्र या अधिक से अधिक दो तीन पात्रों के बाह्य और मानसिक कार्यकलाप नियोजित किए जा सकते हैं। लंबी कहानी में संवेदना या तनाव का क्षण विस्तारित हो सकता है। यही चीज़ उसे कहानी से अलग करती है। लंबी कहानी में भी कथा का दिक् और काल में विकास संभव नहीं होता। आकार की दृष्टि से कहानी का विस्तार 1,000 से 3,000 शब्दों के बीच रखा जा सकता है।”<sup>18</sup>

कहानी मानव-जीवन के किसी एक तथ्य, संवेदना या घटना को कौतूहल, मनोरंजक, रोचक, यथार्थपरक और तीव्र गति से व्यक्त करने की संक्षिप्त कथात्मक विधा है-“वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम, अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है, बल्कि अनुभूतियाँ ही रचना भावना से अनुरजित होकर कहानी बन जाती है।”<sup>19</sup>

कथा-साहित्य के अंतर्गत उपन्यास की सजातीय एक नई विधा भी स्वीकृत हुई है, जिसे लघु उपन्यास या उपन्यासिका कहा जाता है। इसके आकार को लेकर ‘हिंदी साहित्य कोश’ में कहा गया है- “यों तो उपन्यास के जन्मकाल से ही छोटे उपन्यास लिखे जा रहे हैं और जहाँ एक ओर 4,000 पृष्ठों का उपन्यास है, वहाँ दूसरी ओर केवल 20,000 शब्दों में संपूर्ण उपन्यास की कथा कह दी गई है। इन दो अतियों के बीच आकार की आश्चर्यात्मक विविधता कथासाहित्य के इस संज्ञा वाले रूप में पाई जाती है। इसी विविधता में से नॉवलेट (लघु उपन्यास या उपन्यासिका) नाम से कथासाहित्य का एक पृथक् रूप पहचानकर निकालने की चेष्टा की गई है।”<sup>20</sup>

इसे अंग्रेज़ी में Novelette या short Novel कहा जाता है। ‘The New Collins Concise Dictionary of the English Language’ में इसका अर्थ इस प्रकार दिया गया है- “(i) an extended prose narrative or short novel. (ii) a novel that is regarded as slight, trivial or sentimental.”<sup>21</sup>

लघु उपन्यास का अपना एक स्वतंत्र स्वरूप है। इसमें कथानक संश्लिष्ट यथार्थ पर आधारित होता है, जो किसी भी उपन्यासिका को मॉनोलिथिक नहीं होने देता। किसी एक पात्र को केंद्रीभूत करके चरित्र-चित्रण किया जाता है। इसमें उपकथानक नहीं होता, प्रासंगिक कथायें बहुत कम होती हैं, देशकाल व वातावरण का सूक्ष्म और विशद् चित्रण नहीं किया जाता, संवेदना तीव्र एवं भावात्मक होती है, शैली आत्माभिव्यंजक होती है, कथानक क्षिप्र गति से बढ़ता है, आधार छोटा होता है। अतः लघु कथा को हम जीवन का खंड-चित्र कह सकते हैं।

प्रायः विद्वानों ने लघु उपन्यास और उपन्यासिका को एक माना है। परंतु गोपालराय इससे असहमत प्रतीत होते हैं- “लघु उपन्यास और उपन्यासिका पदों का प्रयोग लगभग एक अर्थ में होता है। यह अनावश्यक और भ्रमोत्पादक है। हम चाहें तो इन्हें अलग-अलग अर्थ देने की कोशिश कर सकते हैं।”<sup>12</sup>

उपन्यास मानव-जीवन का समग्र चिंतन करने वाली संवेदना से परिपूर्ण, यथार्थपरक, लोकप्रिय विधा है। सृष्टि में जो कुछ भी है, सभी कुछ उपन्यास की परिधि में समा जाता है।

गद्य की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण विधाएँ कहानी और उपन्यास ही समझे जाते हैं- “यद्यपि अब तक के हिंदी साहित्य की मुख्य प्रतिभा कविता के माध्यम से ही प्रकाशित हुई, परंतु बीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य का सबसे नया और शक्तिशाली रूप उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से ही प्रकट हुआ। उपन्यास एवं कहानियाँ इस काल के महत्त्वपूर्ण साहित्यांग हैं।”<sup>13</sup> चूँकि इस शोध पत्र का विषय कथा-साहित्य के अंतर्गत उपन्यास और कहानी पर केंद्रित है। इसलिए कथा के उद्भव और स्वरूप के अंतर्गत आगे सिर्फ कहानी और उपन्यास को केंद्रित कर चर्चा की जायेगी।

मानव-जीवन की स्थितियों को अधिक-से-अधिक पूर्णता के साथ चित्रित करने के कारण ही कथा-साहित्य का जन्म हुआ है और गद्य-साहित्य की विधाओं में नए प्रकार का शिल्प सामने आया था। आधुनिक युग में हिंदी कथा-साहित्य की उपलब्धि और उसका विकास विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। हिंदी कथा-साहित्य उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरंभ होता है! आज उपन्यास और कहानी कथा-साहित्य के सबसे निकट एवं प्रमुख हैं। ‘कथा’ को काव्यात्मक रूप में कहने की परंपरा को तोड़कर गद्य में ढालने में प्रमुख भूमिका उपन्यास व कहानी ने निभायी है। कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद उपन्यास सम्राट के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रेमचंद ही वह लेखक हैं, जो कथा-साहित्य के ढाँचे (स्वरूप) में क्रांतिकारी बदलाव लाये। प्रेमचंद ने निम्नलिखित उद्धरण में कथा-साहित्य के आरंभिक रूप पर प्रकाश डालते हुए बताया कि उपन्यास के रूप में बदलाव कैसे

आया-“कथा-साहित्य में भी विकास हुआ और उसके विषय में चाहे उतना बड़ा परिवर्तन न हुआ हो, पर शैली तो बिल्कुल बदल गई। अलिफ लैला, उस वक्त का आदर्श था- उसमें बहुरूपता थी, वैचित्र्य था, कुतूहल था, रोमांस था; उसमें जीवन की समस्याएँ न थीं, जीवन अपने सत्य रूप में इतना स्पष्ट न था। उसका रूपांतर हुआ और उपन्यास का उदय हुआ, जो कथा और नाटक के बीच की वस्तु है।”<sup>14</sup>

प्रेमचंद उपन्यास को कथा और नाटक के बीच की वस्तु मानते हैं, उनके अनुसार समय के साथ रचना-शैली भी बदलती है। अतः कहानी और उपन्यास का रूप परिवर्तित तो होता है, मगर मूल ढाँचा (मूल तत्त्व) नहीं बदलता।

### स्वरूप

मुंशी प्रेमचंद ने हिंदी कथा-साहित्य को मनोरंजन से ऊपर उठाकर, जीवन के सार्थक पहलुओं की ओर उसका ध्यान आकर्षित कर, हिंदी साहित्य में अतुलनीय योगदान दिया है। उन्होंने परतंत्रता, जमींदारों, सामंतों, पूँजीपतियों द्वारा किसानों का शोषण, गरीबी, शिक्षा-विहीनता, अंधविश्वास, देहेजप्रथा का विरोध, परिवार व समाज में नारी का संघर्षमय जीवन, वेश्याओं की जिंदगी, अनमेल विवाह, विधवा-समस्या, साम्प्रदायिक दंगे तथा मध्यवर्ग की कुंठाओं आदि समस्याओं का चित्रण करके एक तरह से अनेक प्रश्न उठाये हैं, जो सामाजिक स्थितियों के विषय में हमें खाली सोचने-समझने को ही बाध्य नहीं करते वरन् हमारे भीतर कँपकँपी उत्पन्न कर देते हैं। ऐसा संयोग साहित्य में बेजोड़ ही नहीं, अपितु सर्वश्रेष्ठ है। प्रेमचंद ने ‘कुछ विचार’ में साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा लिखते हुए कहा है-“भरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के। उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।”<sup>15</sup>

कथा-साहित्य का पूर्ण विकास आधुनिक युग में हुआ। कथाकार किसी घटना या वस्तु का अनुभव करने, उस विषय को अनुभूति में बदलने के फलस्वरूप जो रचनात्मक प्रतिफलन सामने आता है और कथाकार उसमें संतुलन स्थापित करते हुए अपनी कल्पनाशीलता के साथ ही उसमें यथार्थ का समावेश कर, कथा को एक अप्रतिम रूप देता है। ऐसा ही कुछ शांति स्वरूप गुप्त जी कहते हैं-“कथा-साहित्य का वास्तविक उद्देश्य मानव-अनुभव में असामान्य के प्रति रुचि को संतुष्ट कर आनन्द प्रदान करता है। अतः कथा लेखन की समस्या है- असामान्य और सामान्य के बीच संतुलन स्थापित करना, जिससे एक ओर पाठकों का रंजन कर सके और दूसरी ओर

यथार्थ की प्रतीति करा सके, क्योंकि प्रभावित करने के लिए पहले विश्वास उत्पन्न करना आवश्यक है।<sup>16</sup>

मानव-जीवन के अनेकानेक पक्षों, परिस्थितियों तथा समसामयिक घटनाओं का हू-ब-हू चित्रण को व्यक्त करने की क्षमता कथा-साहित्य में अधिक होती है। सम्पादक डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. महीप सिंह कृत 'समकालीन साहित्य चिंतन' में कथा-साहित्य को बुद्धिजीवी और मध्यवर्ग का मानते हुए कहा गया है-“कथा-साहित्य हमेशा बुद्धिजीवी और मध्यवर्ग का महाकाव्य रहा है। जिये जाने वाले जीवन के प्रति उसकी तात्कालिक प्रतिक्रिया कथा-साहित्य में सबसे अधिक होती है।<sup>17</sup> वस्तुतः कथा-साहित्य में बुद्धिजीवी और मध्यवर्ग का ही नहीं, निम्नवर्ग का भी भरपूर चित्रण हुआ है। अर्थात् साहित्य में समाज के हर तपके का चित्रण होता है।

गोविंद मिश्र की भिन्न-भिन्न रचनाओं-उपन्यास, कहानी में कथा-साहित्य के स्वरूप पर केंद्रित कुछेक अंश विचारणीय हैं-मिश्र जी के इस अंश में कहानी व उपन्यास दोनों की चर्चा है-(क) “कहानी या उपन्यास देश की बेकारी, गरीबी दूर कर सकते हैं या कि भारत-जैसे समाज में कोई क्रांति ला सकते हैं... इस तरह के दावों में छोटे या बड़े रूप में शामिल होना सिर्फ आत्म-प्रवचन है। फिर भी साहित्य का दायित्व होता तो है... मेरे विचार से वह है सच्चाई और न्याय की बराबर पक्षधरता करना...और इस हैसियत से हर साहित्यकार स्वयं को चाहे-अनचाहे, हमेशा ही उस वर्ग के साथ पायेगा, जिसके साथ अन्याय हो रहा है। उसकी आवाज़ हमेशा ही झूठ और अन्याय के खिलाफ निकलेगी। लेखक की यह नियति है, जो उसके लेखन-कर्म से जुड़े होने-मात्र से ही पैदा हो जाती है।<sup>18</sup> सिर्फ शोषित-उत्पीड़ित वर्ग के और सच्चाई के वर्णन तक ही साहित्यिक उपादेयता सीमित नहीं है। जहाँ तक साहित्य द्वारा बेकारी, गरीबी दूर करने के और समाज में क्रांति की बात है तो कहा जा सकता है कि समाज में साहित्य भी गरीबी और बेरोजगारी दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जैसे-पत्रकार के रूप में, अनुवादक के रूप में, छोटी-बड़े संस्थानों में, हिंदी विभागों में, स्कूल में, कॉलेजों में, फिल्मों में, दूरसंचार में आदि-आदि में रोजगार के अनेक अवसर होते हैं। यहाँ मिश्र जी का आशय इस बात से है कि साहित्यकार का प्रमुख दायित्व सत्य और न्याय के पक्ष में खड़ा होना है। मगर बच्चन सिंह की साहित्य संबंधी अवधारणा है-“साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती।<sup>19</sup>

कथा ही नहीं, किसी भी तरह की रचना का अपना अलग स्वरूप होता है और उसका प्रभाव लेखक पर भी पड़ता है। रचना लेखक के व्यक्तित्व का भी परिष्कृत और परिमार्जन

करती है। क्योंकि लेखक अपने रचना लेखन के दौरान जिस रचना प्रक्रिया से गुजरता है, उसका असर उसके व्यक्तित्व पर भी पड़ता है जब तक लेखक अपने अनुभवों को रचना में नहीं लाता, तब तक वह उसकी नितांत निजी अनुभूति होती है। रचना के अस्तित्व में आते ही लेखक के अनुभवों की निजता खत्म होकर सर्वजनीन हो जाती है अर्थात् रचना स्वयं में स्वतंत्र होती है ... हो जाती है-(ख) “अक्सर महसूस किया है कि रचना भी लेखक के व्यक्तित्व पर अपना असर छोड़ती है... अक्सर इस हद तक कि एक बड़ी रचना के बाद लेखक वही पुराना व्यक्ति नहीं रह जाता। ऐसा शायद इसलिए होता है कि वे प्रसंग, जिन्होंने कभी लेखक के व्यक्तित्व को झकझोरा था, उनकी रचना में उतरते समय और भी गहरी जाँच-पड़ताल होती है...यह वह बिंदु है, जहाँ जीवन का एक निहायत व्यक्तिगत टुकड़ा एक बड़ी ही निजी कहानी पब्लिक प्रॉपर्टी बनने को प्रस्तुत होती है...जहाँ व्यक्ति की जीवन धारा सामूहिक नदी में मिलती है।<sup>20</sup> (ग) “रचना पूरी होते ही लेखक से अलग एक अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व हासिल कर लेती है...जैसे कोई चिड़िया पर उगते ही आसमान में उड़ जाती है।<sup>21</sup> इसीलिए रचना के स्वरूप के विषय में बात करते हुए मिश्र जी उसे पर लगते ही आसमान में उड़ने वाली चिड़िया की उपमा देते हैं।

भारतीय संस्कृति में सदा से ही लघुता के वरण और अहंकार के त्याग की प्रवृत्ति रही है और साहित्यकार के लिए ऐसे संस्कारों का वरण तो अनिवार्य होता है। मिश्र जी भी इस तत्त्व को स्वीकार करते हैं-“लघुता का वरण, अहंकार का त्याग. यह हमारे ‘एथोस’ का एक महत्वपूर्ण अंग है, जबकि व्यक्ति का महत्त्व, उसके इर्द-गिर्द बुना अहंकार, जो विज्ञान के रास्ते आज हमें यहाँ तक लाया है कि एक कदम आगे, बस, पागलपन ही है...ये सब पुनरूत्थान (पश्चिम) के बीजमंत्र थे। मैं अपने ‘एथोस’ का ही तो हो सकूँगा। ये 75वीं वर्षगाँठ, ये षष्टिपूर्ति...ये पुरस्कार...ये सम्मान...ये सब मुझे अपने भावजगत् के बाहर की चीज़ें लगती हैं। प्रकृति की हर चीज़ ही तो कुछ-न-कुछ दे रही है-संभवतः मेरी रचनाओं से ज्यादा महत्वपूर्ण। वहाँ तो कोई स्वयं को सम्मानित नहीं करता। आदमी ने भाषा क्या आविष्कृत कर ली स्वयं को गौरवान्वित करने का कोई मौका नहीं चूकता वह।<sup>22</sup> उपर्युक्त अंशों के आधार पर कहा जा सकता है कि गोविंद मिश्र की सृजनशीलता में यथार्थ, कल्पनाशीलता और भावुकता के साथ रचनाधर्मिता के तत्त्व दिखाई देते हैं। उनके उपन्यास व कहानियों में जहाँ तक एक ओर क्रूर-से-क्रूर सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने का आग्रह है, वहीं आधुनिक जीवन का सौंदर्य और आधुनिक जीवन के नए मूल्य-बोध की दृष्टि दिखाई देती है।

अंग्रेजों ने भारत में अपना उपनिवेश स्थापित करने के लिए मुद्रण यंत्र के प्रचलन, धार्मिक, सामाजिक एवं बौद्धिक आंदोलनों के उत्थान, शिक्षण संस्थानों की स्थापना, पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार तथा शिक्षा नीति में बदलाव किया-“यह सच है कि हिंदुस्तान में सामाजिक क्रांति लाने के लिए ब्रिटेन ने जो कुछ किया था उसके पीछे उसके निकृष्ट स्वार्थों की पूर्ति का लक्ष्य निहित था। इसके लिए उसने जो तरीका अपनाया, वह दुष्टतापूर्ण था। पर प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य-जाति एशिया की मौलिक व्यवस्था में सामाजिक क्रांति हुए बिना अपने लक्ष्य तक पहुँच सकती है? यदि नहीं तो इंग्लैंड ने जो अपराध किए हैं इस क्रांति को लाने में, वह अनजाने इतिहास का हथियार बन गये।”<sup>23</sup> किया तो अपने कुत्सित स्वार्थ के लिए मगर उसका फायदा भारतीय साहित्य को भी मिला। ब्रिटिश साम्राज्य के आधिपत्य में जब देश आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक रूप से शोषण का शिकार हुआ, तभी देश में बुद्धिजीवी वर्ग ने जनता को जाग्रत कर, अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में आज़ादी प्राप्त करने के लिए, लेखनी के माध्यम से ही भारतीय जन-मानस की पीड़ा तथा विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए जिन विधाओं को माध्यम बनाया, उनमें काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना आदि प्रमुख हैं-“जिन दिनों हिंदी में कथा-साहित्य लेखन की शुरुआत हो रही थी, उन्हीं दिनों देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक क्षेत्रों में भयंकर उथल-पुथल हो रही थी। ईस्ट इण्डिया कंपनी के हाथों देश का शासन सीधे ब्रिटिश ताज की अधीनता में जा चुका था। देश में पहली बार एक ऐसी लौकिक और सार्वजनिक शिक्षा-प्रणाली अस्तित्व में आई, जिसने वर्णाश्रम प्रतिबंधों को नकारते हुए सबके लिए शिक्षा के दरवाजे खोल दिए। इसका सीधा असर भी उन धार्मिक सुधार आंदोलन के रूप में दिखाई दिया, जिन्होंने भारतीय नवजागरण की नींव डाली। सीधी अंग्रेजी हुकूमत ने आर्थिक शोषण की ज्यादा व्यापक और मारक व्यवस्था की। इन सारी स्थितियों का नतीजा देश में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ प्रतिरोध और आज़ादी के लिए संघर्ष में दिखाई पड़ता है। हिंदी कथा-साहित्य पर इस पूरी उथल-पुथल का सीधा असर पड़ता है। हिंदी कहानी के तीन पड़ाव-1900 से 1914, 1914 से लेकर 1936 और 1936 से 1950- देश में घट रहे घटनाक्रम से सीधे-सीधे प्रभावित नज़र आते हैं। 1950 अर्थात् स्वतंत्रता के बाद की कहानी एक सुनहरे सपने के टूटने और मोहभंग की कथा है और हिंदी कहानी और उपन्यास दोनों ने बखूबी भारतीय मन की इस पीड़ा के नैरेटर का रोल अदा किया है।”<sup>24</sup> ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन से मुक्ति पाने में कथा-साहित्य की अहम भूमिका रही है।

मधुरेश ने हिंदी कथा लेखन की प्रारंभिक अवस्था के बारे में ‘कथा-साहित्य के सौ बरस’ में लिखा है, कथा के स्वरूप हैं-उपन्यास एवं कहानी। निम्नलिखित उद्धरण में उपन्यास के मूल्यांकन के बारे में बात की गई है-“पिछले दिनों उपन्यास की आलोचना के संदर्भ में अनेक सवाल उठाए गए हैं। उपन्यास जैसे लचीले, बहुरूपिया और विकासमान साहित्य रूप को किन्हीं बने बनाए पूर्वनिर्धारित साँचों में अटाकर नहीं देखा जा सकता। उसके मूल्यांकन के प्रतिमान और पद्धति के निर्माण में एक ओर यदि सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, वहीं रचनाओं की अपनी स्वतंत्र, साहसिक और अन्वेषणशील प्रकृति को अनदेखा करना भी गलत होगा। आज दुनिया में बस कहीं उपन्यास के संदर्भ में यथार्थ की भूमिका को शंका की दृष्टि से देखा जा रहा है। लेकिन ऐसी किसी शंका के मूल में यथार्थ का बहिष्कार नहीं, उसकी अधिक प्रभावी और कलात्मक प्रविधियों के अन्वेषण की चिंता ही मुख्य है।

हिंदी कथा-आलोचना में मधुरेश की पहचान अपने समय की रचनाशीलता को उसके सामाजिक संदर्भों के बीच गंभीरता से देखने-समझने वाले आलोचक की रही है। रचना के कलात्मक मूल्यों की उपेक्षा किए बिना उनका मानना है कि हर सार्थक रचना अपने समय में एक सार्थक वैचारिक हस्तक्षेप भी करती है। ‘हिंदी उपन्यास : सार्थक पहचान’ में वे देवकीनंदन खत्री से शुरू करके अपने बहुवर्णी समकालीन रचनात्मक परिदृश्य को गंभीर पड़ताल में उद्यत दिखाई देते हैं।<sup>25</sup> उपन्यास ही क्या है? किसी भी साहित्यिक विधा को बने-बनाये साँचों में नहीं ढाला जा सकता। उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकार अगर ज़रूरी है, तो स्वतंत्र अभिव्यक्ति होने के साथ निष्पक्ष तथा अन्वेषणशील प्रकृति का अभाव नहीं होना चाहिए। उनके मूल्यांकन में सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को अलग नहीं किया जा सकता। रचना अपने समय के यथार्थ से सरोकार रखती है, साथ ही, वैचारिक हस्तक्षेप भी करती है। लेकिन उसे अधिक प्रभावी और कलात्मक बनाने के चक्कर में लेखक से यथार्थ की जैसी अभिव्यक्ति की अपेक्षा होती है, उसमें कसर रह जाती है। यथार्थ की अभिव्यक्ति को लेखक ऐसे ही खतरे की ओर ऊपर संकेत किया गया है।

निःसंदेह कथा की चर्चा के प्रसंग में विधा की दृष्टि से तो हम उपन्यास और कहानी की चर्चा पृथक्-पृथक् करते हैं। किंतु दोनों में ही विद्यमान है कथा-‘कथापि खुलू पापानां लमश्रेयसे यतः। अंत में गोविंद मिश्र की पंक्तियों के माध्यम से ‘कथा’ को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है-“कथा तो सिर्फ वह सहारा है, जिसपर चलना है, असली चीज़ है चलना और चलाना। यही है कि आप उसको उभार सकें, सारी पीड़ा

को बगैर भावुक हुए बगैर रोये हुए। रोइए नहीं, जो चीज़ है उसे पेश करिए, तो वह आप-से-आप लोगों को हिलायेगी।”<sup>26</sup> यहाँ मिश्र जी रचनाकार से तटस्थता की माँग करते हैं। लेकिन साहित्यकार को रचना में तटस्थता के साथ, संवेदना और अनुभूति को भी भरपूर महत्त्व देना पड़ता है।

#### संदर्भ-

1. (संपादक मण्डल) डॉ. धीरेंद्र वर्मा, डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, डॉ. धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ. रघुवंश संयोजक: 'हिंदी साहित्य कोश' भाग-1, पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 158
2. वामन शिवराम आपटे, संस्कृत-हिंदी शब्दकोश, पृ. 24
3. Managing Editor William T. Mc. Leod : 'The new collins concise Dictionary of the English Language' पृ. 411
4. गोपालराय, हिंदी कहानी का इतिहास, पृ. 19
5. (संपादक) प्रो. हरिमोहन, ग्यारह कहानियाँ, पृ. 11
6. गोपालराय, हिंदी कहानी का इतिहास, पृ. 27
7. डॉ. अमरनाथ, आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 448
8. गोपालराय, हिंदी कहानी का इतिहास, पृ. 36-37
9. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-1, पृ. सं. प्राक्कथन (5) से
10. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, पारिभाषिक शब्दावली, पृ. 583
11. The collins concise Dictionary of the English Language', p. 770
12. गोपालराय, हिंदी कहानी का इतिहास, पृ. 36
13. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, पृ. 217
14. प्रेमचंद, कुछ विचार, पृ. 34-35
15. वही, पृ. 6-7
16. डॉ. शांति स्वरूप गुप्त, हिंदी उपन्यास, महाकाव्य के स्वर, पृ. 1
17. (संपादक) डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. महीप सिंह, समकालीन साहित्य चिंतन, पृ. 79
18. गोविंद मिश्र, मुझे घर ले चलो, पृ. 196
19. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 322-23
20. गोविंद मिश्र, मुझे घर ले चलो, पृ. 195
21. गोविंद मिश्र, मेरी प्रिय कहानियाँ, पृ. भूमिका से
22. गोविंद मिश्र, कथाभूमि, पृ. 12-13
23. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 277-78
24. (संपादक) विभूति नारायण, कथा-साहित्य के सौ बरस, पृ. फ्लैप पृ. प्रथम पर
25. मधुरेश, हिंदी उपन्यास सार्थक की पहचान, पृ. फ्लैप पृ. प्रथम पर
26. गोविंद मिश्र, साहित्य का संदर्भ, पृ. 26-27

ग्राम एवं पोस्ट-घोड़ासिल, जिला- पिथौरागढ़-262532



---

## नचिकेता का स्त्री-विमर्श

आकाश वर्मा

स्त्री हमेशा से पुरुष की सहयोगी रही है, शरणस्थली रही है। वह कभी भी, किसी भी परिस्थिति में पुरुष का साथ देने में पीछे नहीं रही है। लेकिन वहीं पर, पुरुष अपने अहंवादी प्रवृत्ति के कारण उसकी संवेदना को प्रारंभ से ठेस पहुँचाता रहा है। यहाँ विचार कर सकते हैं कि पुरुष सत्तात्मक सामाजिक संरचना ही क्रमशः स्त्री को दबी हुई मानसिकता में जीने के लिए विवश करती गई। एक व्यवस्था जिसे हम परिवार कहते हैं, जो एक दूसरे के सहयोग की खातिर एक निर्दोष समझौते के चलते बना, वहीं पर स्त्री क्रमशः गुलाम बनती गयी। पुरुष उसके प्रशासक के रूप में स्थापित होता गया। धीरे-धीरे पुरुष ने परिवार से सामाजिक सत्ता और फिर पूरी व्यवस्था पर अपने आप को स्थापित कर लिया। अंततः एक ऐसी सामाजिक संरचना सामने आती है जिसमें स्त्रियों के लिए पुरुषवादी व्यवस्था स्थापित हो जाती है। इस पुरुष प्रधान मानसिकता वाले समाज में स्त्री हर आयु वर्ग में पुरुष से कमतर और कमजोर आंकी जाती रही है और घर से बाहर की कोई भी जिम्मेदारी नहीं दी जाती। सवाल यह है कि स्त्री के साथ ऐसा क्यों हुआ। जहाँ तक ढूँढ़े उत्तर यही मिलता है कि शारीरिक बनावट और इसी बात पर हमारी सोच भी आधारित है। स्त्री के शारीरिक बनावट के कारण सदैव उसे पुरुष से कमजोर माना जाता और कोमल स्वीकार किया गया है। इसी कारण उसे घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी सौंप दी जाती रही और कभी भी उसे निर्णायक होने का पद नहीं दिया गया। मजबूरन उसे घर की चहारदीवारी में कैद होना पड़ा। कभी-कभी उसे निर्णायक बनाया गया तो बिना पुरुष की सहमति के उसे स्वीकार नहीं किया गया। किसी भी निर्णयात्मक स्थिति में पुरुष वर्चस्व ने रूढ़ स्थिति बना ली, जो परिणामतः सामाजिक मान्यता के रूप में स्थापित हो गया।

आज जबकि पूरा विश्व बहु-संस्कृति से एक-संस्कृति की ओर बढ़ रहा है, स्त्री अपने को पीछे पा रही है। हमेशा से भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति में भी विवश सहमति और

स्वीकार पदस्थिति से निकलकर स्त्री अपनी स्वतंत्र अस्मिता, पहचान और अधिकार पाना चाहती है। पुरुषवादी सोच ने अप्रत्यक्षतः इसका विरोध ही किया है। इसने आसानी से नहीं स्वीकार किया है कि स्त्री उसके समकक्ष हो सकती है। इसके लिए स्त्री को बहुत संघर्ष करना पड़ा है और करना पड़ रहा है। आज भी एक स्त्री के लिए अपने अधिकारों की खातिर आवाज़ उठाना आसान नहीं है। पिछले दो दशकों में उभरे स्त्री-विमर्श जैसी विचारधारा ने स्त्रियों के लिए बहुत संघर्ष किया है, पर स्त्री आज भी अपनी उन्हीं विडम्बनाओं से जूझ रही है, संघर्ष कर रही है जिनसे वह संघर्ष करती आ रही है। आज स्त्री पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है, पुरुष की हर ऊँचाई को छू रही है। पर साथ ही यह भी विडम्बना बनती जा रही है कि स्त्री उन तत्त्वों को भी अपना रही है, जिनसे पुरुष का रूप पतित हुआ। इसे स्त्री-विमर्श के चलते अति जागरुकता कहें या आधुनिकता का परिणाम कहें या पुरुष सत्ता के विरोध का प्रतिफल। चाहे जो कह लें, धीरे-धीरे एक और नयी विडम्बना बनती जा रही है कि अति जागरुकता और स्त्री-विमर्श के चलते स्त्री और पुरुष के बीच की दूरी भी बढ़ती जा रही है। इस समस्या का भी हल आवश्यक है।

जनवादी गीतकार नचिकेता इसी सहारा देने वाली, शक्ति प्रदयिनी, वत्सला नारी के जीवन को अपने गीतों में ढालते हैं। उसी स्त्री के जीवन यथार्थ और विडंबनाओं, उसके सुख-दुख, अभावों और उसके ऊपर होने वाले अत्याचार एवं शोषण का चित्रण इनके गीतों में हुआ है। निम्न तथा मध्यवर्गीय स्त्री की पीड़ा तथा उसका संघर्ष का चित्रण ही एक तरह से नचिकेता का स्त्री-विमर्श है। अपने परिवार तथा पति के लिए सब कुछ न्यौछावर कर देने वाली स्त्री अपने जीवन में किन-किन विडंबनाओं में जी रही है नचिकेता के गीतों में साफ दिखायी देता है। उसके बारे में कोई नहीं सोचता। एक ओर वह पुरुष की शरणस्थली बनी है तो दूसरी ओर उसी के द्वारा प्रताड़ित भी होती है। पति कैसा भी हो परमेश्वर है या स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं

हो सकती जैसी संकीर्ण मान्यताओं का वे घोर विरोध करते हैं। जैसा कि हमारे पौराणिक एवं धार्मिक ग्रंथों में कहा गया है-“पिता रक्षन्ति कौमारे भर्ता रक्षन्ति यौवने/रक्षन्ति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।।”<sup>1</sup> (अर्थात् स्त्री कभी स्वतंत्रता की अर्हता नहीं रखती, कौमार्य (बचपन) की अवस्था तक पिता के संरक्षण में, यौवन (विवाह के बाद) में पति के संरक्षण में तथा वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहना ही उसकी नियति है) या त्रिशूलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः/उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिम्।।<sup>2</sup> (अर्थात् पति के दुराचारी और पतित होने की दशा में भी पत्नी का कर्तव्य है कि देवता के समान उसकी सेवा व पूजा करे)

नचिकेता के यहाँ देखे तो इस तरह की मान्यताओं के प्रति प्रतिरोध दिखायी देता है। वहीं दूसरी ओर वे स्त्री के उन्मुक्त स्वतंत्रता के समर्थक भी नहीं हैं। स्त्री स्वातंत्र्य एवं स्त्री विमर्श के नाम पर वे स्त्री के पाश्चात्य संस्कृतिकरण की बात नहीं करते। परिवर्तन के नाम पर वे भौंडेपन और अर्द्धनग्नता का समर्थन नहीं करते। अगर स्त्री विमर्श के उद्देश्य से उन्मुक्तता, उच्छूलता को बढ़ावा मिलता है तो नचिकेता को इससे परहेज है। वे व्यंग्य करते हैं-“वक्त बदला/दृश्य पूरा/हो गया उल्टा/वत्सला माएं/दिखायी दे रहीं कुलटा।”<sup>3</sup>

...डिस्को की धुन पर अधनंगे जिस्म थिरकने लगे यहाँ।<sup>4</sup> यहाँ नचिकेता स्त्री को प्रतिबंधित नहीं करते, बल्कि स्त्रीहीनता पर विचार करने की बात करते हैं।

नचिकेता के गीतों में आने वाली स्त्री निम्न वर्ग और निम्न-मध्य वर्ग से है, ग्रामीण परिवेश से है। दरअसल, नचिकेता मूलतः जनवादी गीतकार हैं और उनका जुड़ाव इसी परिवेश से अधिक है। उनके गीतों में शहरी निम्न और निम्न-मध्य वर्ग का जीवन संघर्ष भी स्थान पाया है। इन्हीं परिवेशों और परिवार से जुड़ी स्त्री के जीवन यथार्थ को सामने रख कर विचार करने की बात करते हैं। अपने गीतों के माध्यम से नचिकेता स्त्री के एकरस हो चले जीवन यथार्थ और उसकी विडम्बनाओं को पुरुष सत्तात्मक समाज के सामने रख कर सोचने के लिए प्रेरित करते हैं। घर की मालकिन बनकर रहने वाली स्त्री के भीतर की पीड़ा को नचिकेता बड़े मार्मिक ढंग से कहते हैं-“कहने को तुम तो मेरे घर की रानी हो/आँचल भर हो दूध आँख भर खारा पानी हो।”<sup>5</sup>

साधारण और सीधी भाषा में कहने वाले नचिकेता स्त्री से भी उसकी विडम्बना पर प्रश्न करते हैं कि क्या उसकी नियति केवल माँ, बहन, प्रेमिका (पत्नी), बेटी के ही रूप में ही जीना है? क्या उसकी इच्छायें धान की खोखली बालियों की तरह ही रहेंगी? ....क्या उसकी पहचान मात्र चुटकी भर सिंदूर तक ही

रहेगी? कहीं न कहीं नचिकेता स्त्री की अपनी पहचान एवं अस्तित्व की बात करते हैं। जिस तरह से पुरुष की अपने घर परिवार से बाहर एक पहचान होती है उसी तरह एक स्त्री की भी पहचान बने। स्त्री हर कहीं पुरुष (पिता और पति) के नाम से ही जानी जाती है। वास्तव में नचिकेता ये सभी प्रश्न स्त्री के बहाने पुरुष सत्तात्मक समाज से पूछते हैं। जो सब कुछ जानता, समझता है पर चुप रहता है। वह कोई उत्तर नहीं देता और केवल मुस्कराता है। वे पूछते हैं-“क्या तुम नहीं रसोई घर की /एकल दासी हो/बिना मजूरी लिए रात दिन खूब खटा करती /माता, बहन, प्रिया, बेटी में सदा बँटा करती/बरखा तेज नहीं, राहत/दे रही फलासी हो /...../चुटकी भर सिंदूर न क्या पहचान तुम्हारी है/खौआती इच्छायें खखड़ी धान तुम्हारी हैं/तुम हो अर्थ नहीं कविता के/बस फंतासी हो।”<sup>6</sup>

यह अजीब विडम्बना है कि अधिकांश स्त्रियाँ अपना संपूर्ण जीवन दूसरों की इच्छाओं को पूरा करके ही बिता देती हैं। उसी में उसे खुश भी रहना पड़ता है। उसी विवाहिता स्त्री का शोषण भी उसी परिवार में होता है जिस पर रूढ़िवादी और जड़ समाज कुछ नहीं कहता है। उसकी विडम्बना है कि वह दहेज के लिए प्रताड़ित होती है और न हुआ तो लड़का न जन्म देने के कारण। शारीरिक और मानसिक शोषण वह चुपचाप सहती रहती है। एक संकीर्ण परिवार में बहू (नारी) की नियति का चित्रण नचिकेता के यहाँ देखा जा सकता है-“कुशल क्षेम से/पिया गेह में/बहन तुम्हारी है/सुबह/सास की झिड़की/बदन झिंझोड़ जगाती है/और ननद की/जली कटी/नशतरं चुभाती हैं/पूज्य ससुर के/आँखों की/बढ़ गयी खुमारी है/नहीं हाथ में/मेहंदी/झाड़ू, चूल्हा चौका है/देवर रहा तलाश/ निगल जाने का/मौका है/और जेठ की/जिहवा पर भी रखी/दुधारी है/पति परमेश्वर/ सिर्फ चाहता/खाना गोश्त गरम/और पड़ोसिन के घर/लेती है/अफवाह जनम/करमजली होती/शायद/दुखियारी नारी है।”<sup>7</sup>

स्त्री की शोषण की शुरुआत स्त्री से ही होती है और समाप्त होती है पुरुष शोषण के साथ। समाप्त होने का मतलब यह है कि सबकुछ सहते-सहते वह इतनी कठोर हो जाती है कि शोषण को ही अपना जीवन मान लेती है। इसे ही अपना भाग्य और नियति मान लेती है। इसी में वह खुश रहना सीख लेती है, मुस्कराने का प्रयास करती है। “तूने जीना सीख लिया है आँसू पी-पीकर।”<sup>8</sup> वैसे तो आज समाज और उसकी सोच में परिवर्तन आ रहा है। लेकिन यह नगरीय संस्कृति में ही अधिक है। परंतु वहाँ पर भी दूसरे तरह का स्त्री शोषण जन्म ले रहा है। शहरों में स्त्रियों को घरेलू अधिकार तो मिलने लगे हैं, लेकिन मानसिक रूप से अब भी उन पर अनेक प्रतिबंध हैं।

ग्राम्य जीवन में तो आज भी लड़की को बोझ माना जाता है। उनको अधिक पढ़ाने-लिखाने का महत्त्व नहीं दिया जाता। लोग जल्दी से जल्दी मुक्त हो जाना चाहते हैं। ...माता और सास स्त्री जीवन की दुहाई देती हैं, तो पिता, ससुर और पति उसके मन की पीड़ा तथा मानसिक कष्टों को अपने पुरुषवादी अहं में समझने की कोशिश भी नहीं करता।

एक ओर घर की रूढ़ियों से उसे मुक्ति नहीं मिलती तो घर के बाहर और भी भयावह स्थिति है। बाहर पुरुष मानसिकता इतनी गिर गयी है कि स्त्री आज कहीं भी सुरक्षित नहीं है। स्थिति तो इतनी बिगड़ गयी है कि आज रक्त-संबंधी रिश्ते भी इस विकृत मानसिकता के शिकार हो चुके हैं। आये दिन समाचार-पत्रों में ऐसी खबरें पढ़ने को मिल जाती हैं। घर और बाहर हर कहीं पुरुष नामक भेड़िया उसके शिकार के लिए सदैव बैठा रहता है। राह चलते कुत्सित मानसिकता वाले अभद्रता की सभी सीमायें तोड़ देते हैं। इस कुत्सित दृष्टि को नचिकेता सीधे-सीधे शब्दों में व्यक्त करते हैं-“पीठ न/समाचार पत्रों का/है पहला पन्ना/जिस पर/खोज रही हैं/भूखी नज़रें/दुराचार से/भरी खबर/आँख बचाकर भी/सब नाप रहे/गदराया हुआ बदन/आते जाते लड़की झेले/रोज पीठ पर/दृष्टि चुभन।”<sup>9</sup>

निम्न वर्ग की स्त्रियों का जीवन और नारकीय हो जाता है। गरीबी, दुख और अभाव में उसे घर से बाहर निकलकर दूसरों के घर में उसे मजदूरी करनी पड़ती है। उसके कष्टों को एक जनवादी रचनाकार बेहतर ढंग से महसूस कर सकता है। गरीबी में जीने वाली रमरतिया जैसी हज़ारों स्त्रियों के जीवन-यथार्थ को नचिकेता इस प्रकार व्यक्त करते हैं-“बड़ी हवेली में चूल्हा-चौका करने जाती हर दिन/अपने नन्हें मुन्ने को कुछ नशा चटाकर रमरतिया/केवल ज़िंदा रहने की खातिर संघर्ष किया करती /बर्तन, बासन, झाड़ू, पोछा, लोढ़ी बनकर रमरतिया/अपने शौहर की खातिर है दो रोटियाँ बचा लेती/कुत्ते के हिस्से की बासी रोटी खाकर रमरतिया/मालिक के भूखे बच्चे को दूध पिलाया करती है।”<sup>10</sup>

वास्तव में हर आर्थिक वर्ग में स्त्री को ही अधिक संघर्ष करना पड़ता है। अपने हिस्से का संघर्ष तो वह करती ही है, परिवार के सभी सदस्यों के हिस्से का भी संघर्ष उसे ही करना पड़ता है। परंतु उसकी पीड़ा को बाँटने वाला कोई नहीं होता। वह एक स्वतंत्र एवं उन्मुक्त हँसी के लिए तरस जाती है। पिता, पति, पुत्र प्रदत्त प्रतिबन्धित स्वतंत्रता में घुटती और निराशा में जी रही है। स्त्री की इस दशा को, उसकी इस सहनशीलता को नचिकेता उसका भाग्य, उसकी मजबूरी नहीं मानते। वे पुरुष वर्ग को चेताते हैं-“निविड़ नींद से/जब जागेगी/हमसे अपना हक मांगेगी/अभी स्वयं से/अपने दुख की ले रही तलाशी है।”<sup>11</sup>

लेकिन पुरुष सत्तात्मक वर्ग उसके हिस्से की धूप, उसके अधिकार, उसके सुख, उसकी स्वतंत्रता को सामाजिक मान्यता के रूप में नहीं देना चाहता। वह कानून और आरक्षण के बहाने देना चाहता है। सच बात है कि अगर आरक्षण न हो तो स्त्री को इतनी आसानी को पुरुषवादी समाज कहीं आगे बढ़ने दे रहा है। लेकिन इसको दूसरी दृष्टि से देखें, तो हमारे भारतीय समाज में स्त्री को नौकरी और शिक्षा या किसी भी तरह का अधिकारी कहीं माना गया है। क्या इससे यह परिलक्षित नहीं होता कि पुरुष सत्तात्मक समाज यह दर्शाना चाहता है कि स्त्रियों की यह स्थिति भी पुरुष प्रदत्त है। इस पुरुषवादी समाज के दर्प और उसकी विकृत मानसिकता पर नचिकेता इस प्रकार व्यंग्य करते हैं-“नहीं बराबर/होने का अधिकार तुम्हारा है/सदा तुम्हारा ऊपर हावी/दर्प/हमारा है/मुक्ति नहीं बस आरक्षण देकर बहलाऊंगा।”<sup>12</sup>

हम कह सकते हैं कि नचिकेता ने हर तरह से पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था पर अपने गीतों में तीखा व्यंग्य किया है। एक स्त्री जीवन के व्यावहारिक सच सामने रख कर विचार करने को जागरूक करते हैं। वह स्त्री जो अपने अभावों से संघर्ष करती है, अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती है, पूरे समाज से संघर्ष करती है।

सच माने तो नचिकेता के यहाँ स्त्री की ओर से पुरुष के विरुद्ध मोर्चा खोलने जैसा कुछ नहीं है। उनका विरोध स्त्रियों के लिए बने पुरुषवादी व्यवस्था से है। इनके यहाँ स्त्री के बिना पुरुष और पुरुष के बिना स्त्री दोनों अपूर्ण हैं। अपने गीतों में नचिकेता स्त्री जीवन के यथार्थ को उभारकर समाज के साथ-साथ पुरुषवादी मानसिकता और व्यवस्था पर ही आक्षेप करने का कार्य किया है। यही नचिकेता का स्त्री-विमर्श है।

### संदर्भ सूची-

1. वशिष्ठ सूत्र, श्लोक, पृ. 1-2
2. मनुस्मृति, श्लोक, पृ. 5, 154
3. रंग न खोने दें, पृ. 71
4. आइना दरका हुआ, पृ. 83
5. मकर चाँदनी का उजास, पृ. 126
6. तदेव, पृ. 121
7. कोई क्षमा नहीं, पृ. 42-43
8. मकरचाँदनी का उजास, पृ. 115
9. कोई क्षमा नहीं, पृ. 40
10. आइना दरका हुआ, पृ. 102
11. रंग मैले नहीं होंगे, पृ. 57
12. मकर चाँदनी का उजास, पृ. 127

हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम-788011

---

## रीतिकालीन समाज में नारी

डॉ. विनीता शुक्ला

रीतिकालीन सामाजिक युग में शृंगारिकता के साथ स्वाभिमान, निर्भयता, पुरुषोचित गुणों का भी समावेश था। इस युग में रीति-नीति को अधिक महत्त्व दिया गया। समाज में स्त्री-पुरुष के अनैतिक एवं अवैध सम्बन्धों को रीतिकालीन कवियों ने स्वीकार नहीं किया। समाज में नैतिकता का पालन करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया किन्तु समाज में नैतिक नियमों का दिनों दिन पतन हो रहा था। अनैतिक कार्य करने वालों के लिए दण्ड का कोई विधान नहीं था। दण्ड विधान का कोई सर्वस्वीकृत रूप भी नहीं था, फलस्वरूप शासक वर्ग निर्णय करने में असमर्थ रहता था। बड़े-बड़े अपराधों के लिए भी दण्ड नहीं दिया जाता था। लोग स्वतन्त्रतापूर्वक अनैतिक कार्यों में संलग्न रहते थे।

रीतिकालीन समाज में सशक्त दण्डविधान न होने के कारण नारी की स्थिति बड़ी दयनीय एवं शोचनीय थी। भारत में मुगलों के विद्रोहों के कारण नारी की दशा निरन्तर हास की ओर उन्मुख होती जा रही थी। नारी पुरुषों पर आश्रित थी। विवाह से पूर्व अपने पिता के नियन्त्रण में रहना पड़ता था और विवाह के उपरान्त पति के नियंत्रण में रह कर उसके आदेशों का पालन करना पड़ता था। वृद्धावस्था में यदि पति का आश्रय नहीं रहा तो पुत्रों के अधीन अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता था। रीतिकालीन सामन्त वर्ग में बहुपत्नी की प्रथा थी, क्योंकि सामन्त वर्ग अत्यधिक सम्पन्न था, निम्न वर्ग में केवल एक पत्नी की प्रथा थी। मध्यकालीन युग में बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दाप्रथा जैसी कुप्रथाएँ जन्म ले चुकी थीं। फलस्वरूप नारी जाति का जीवन चिन्ताजनक था, क्योंकि ये कुप्रथाएँ नारी का शोषण करने में लगी थीं। प्राचीन काल की तुलना में मध्यकाल में नारी की सामाजिक दशा गिरती जा रही थी। प्राचीन काल में नारी को दुर्गास्वरूप माना जाता था, पुरुष उन्हें गृहस्वामिनी का स्थान प्रदान करते थे। कोई भी धार्मिक कृत्य स्त्री के बिना पूर्ण नहीं होता था। रीतिकालीन कवियों ने नारी के स्वकीया, परकीया, पति-मर्यादा, कुल प्रतिष्ठा एवं पति-प्रेम आदि रूपों

का वर्णन किया है। नारी को कौटुम्बिक मर्यादाओं में बाँध कर रखा है। नारी घर आँगन में ही मर्यादा एवं शील संयम का पालन करती है। नारी को पति के प्रेम में ही सम्पूर्ण सुख का आनन्द प्राप्त करने वाली माना गया है। रीतिकाल में कुटुम्ब मर्यादा, मान-सम्मान प्रदान करने वाली, पति के प्रति सम्पूर्ण कर्तव्यों का पालन करने वाली और गृहस्थ जीवन का पालन करने वाली स्त्री का चित्रण किया गया है।

रीतिकालीन समाज में नारी के द्वारा पूर्ण किये जाने वाले कर्तव्यों का ज्ञान सभी को था किन्तु नारी के प्रति पुरुष के कर्तव्यों का बोध किसी को नहीं था। नारी मात्र भोग की वस्तु मानी जाती थी। उसे उसके जीवन के अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया था। यहाँ तक कि अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार भी नारी को प्राप्त नहीं था। पुरुष अपने जीवन की शर्तों पर नारी को जीने हेतु विवश करते थे। पुरुष नारी से सभी प्रकार की अपेक्षाएँ करते थे। परन्तु स्वयं नारी के प्रति अपने कर्तव्यों को भुला चुके थे, उन्हें नारी मात्र विलास की वस्तु प्रतीत होती थी। पुरुष नारी के सौन्दर्यपान करने और उसमें निमग्न हो जाने के लिए तत्पर रहते थे, परन्तु नारी के सम्मान और उसके प्रति अपने कर्तव्यों के लिए जागरुक नहीं थे। यही कारण था कि समाज की नारियाँ अपमानपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थीं। रीतिकाल में नारी का प्रमुख धर्म पति को सभी प्रकार से सन्तुष्ट रखना था क्योंकि पति से ही नारी की सुन्दरता मानी गई है। शील, संकोच एवं लज्जा को नारी का प्रमुख गुण माना गया है। सल्तनत काल में स्त्रियों की दशा अत्यधिक बिगड़ी हुई थी परन्तु भारत की स्त्रियों की दशा जितनी दयनीय थी उतनी अन्य देशों की स्त्रियों की नहीं। तुर्की स्त्रियाँ हिन्दू स्त्रियों की भाँति परतन्त्र नहीं थीं। ईरानी स्त्रियाँ पर्दा अवश्य करती थीं किन्तु मस्जिदों और सामूहिक स्थलों में एकत्रित होने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था वह अपनी इच्छा से अपना जीवन व्यतीत करती थीं। परन्तु इनकी अपेक्षा राजस्थानी स्त्रियों की दशा बड़ी ही हृदयविदारक थी उनकी स्थिति का

मार्मिक वर्णन करते हुए टाड महोदय ने अपने विचार प्रकट किये- “दूसरे देशों की स्त्रियों को राजस्थानी स्त्रियों का भाग्य भयभीत कर देने वाली कठिनाइयों से भरा हुआ दिखलाई पड़ेगा। जीवन के प्रत्येक चरण में मृत्यु उसे अंगीकार करने के लिए खड़ी है- जन्म के समय विष, युवा होने पर अग्नि की लपट- उसका सुरक्षित जीवन युद्ध की अनिश्चितता पर आधारित है जो कभी भी बारह महीने से अधिक नहीं है। हिन्दू समाज पर मुस्लिम समाज का व्यापक प्रभाव पड़ा। लड़कियों को परिवार में अलग रखा जाने लगा और सीमा निर्धारण कर दी गई। इससे मध्ययुग में स्त्रियों की दशा में हास होने लगा।”<sup>11</sup>

पुरुष से पृथक् रहते हुए सामान्यतः रीतिकालीन समाज में नारी की कोई स्थिति ही नहीं थी। नारी को पुरुष के सुख में सुखी और दुख में दुखी होना पड़ता था परन्तु पति पर पत्नी के सुख-दुख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। मुस्लिम स्त्रियों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। डॉ. अशरफ ने मुस्लिम स्त्रियों की शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए लिखा है-“मुसलमानों ने प्राचीन ईरानी परम्पराओं का अनुसरण किया, जो स्त्रियों को हीन स्थिति में रखने के लिए उत्तरदायी है।”<sup>12</sup>

जहाँ रीतिकालीन सामाजिक परिवेश में सर्वत्र नारी की बुरी दशा दृष्टिगत होती है वहीं यत्र-तत्र गौरवपूर्ण नारी के चित्र भी अंकित हैं। मधुसूदन कृत ‘रामाश्वमेध’ की सीता का व्यक्तित्व युगीन परिस्थितियों का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत होता है। मुगल युग में कुछ स्त्रियों ने सम्मान दायक पद प्राप्त किया। मुगल सम्राटों के कुल की महान् स्त्रियाँ जहाँआरा, रोशनआरा, साम्राज्ञी नूरजहाँ, जेबुन्निसा, चाँदबीबी इत्यादि स्त्रियों ने समाज में अपना सम्मानीय पद प्राप्त किया। रीतिकालीन हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति चिन्ताजनक थी। प्राचीन काल से ही नारियों की शिक्षा पर प्रतिबन्ध थे क्योंकि नारी शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया जाता था। ऊँचे घराने के लोग स्त्री शिक्षा की व्यवस्था अपने घरों में ही करते थे किन्तु घर में उन्हें उतनी ही शिक्षा मिल पाती थी जितनी गृहस्थ जीवन के लिए सहायक थी। निर्धन परिवार की स्त्रियाँ दिन भर खेतों में परिश्रम करती थीं। उनके लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। मध्यकालीन समाज के उच्च वर्ग में शिक्षा एवं कलाओं का विकास हुआ। देवीभारती, देवलरानी, रूपमती, पद्मावती, एवं मीराबाई आदि नारियाँ शिक्षित एवं कलाओं में निपुण थीं।

रीतिकाल में शिक्षा प्रणाली मकतब एवं मदरसा दो रूपों में व्यवस्थित थी। मकतब में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था थी और मदरसा में उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी किन्तु मुस्लिम स्त्रियाँ या लड़कियाँ लड़कों के साथ मकतबों और मदरसों में

शिक्षा ग्रहण नहीं करती थीं। स्त्री शिक्षा की व्यवस्था के लिए कोई संस्था नहीं थी। कुछ शिक्षा संस्थाएँ नगरों में थी गाँवों में इस प्रकार की कोई भी शिक्षा संस्थाएँ नहीं थीं। निर्धन एवं कृषक वर्ग की स्त्रियाँ अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के कारण नृत्य एवं कलाओं का ज्ञान भी प्राप्त नहीं कर पाती थीं। इसके विपरीत अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ साहित्य, संगीत एवं नृत्य कलाओं में निपुण थीं। इल्लुतमिश की पुत्री रजिया, बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम, सलीमा, नूरजहाँ, मुमताज, जहाँआरा बेगम, औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा आदि स्त्रियाँ शिक्षित, कलाओं में निपुण, भाषाओं में पारंगत तथा साहित्य सृजन में कुशल थीं। इस युग में कुछ ऐसे दृष्टान्त प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मध्यकालीन समाज में अभिजात वर्ग की स्त्रियों को उच्चकोटि की शिक्षा मिलती थी। भरत चन्द्र की पुस्तक ‘विन्ध्यसुन्दरी’ में लिखा है कि राजकुमारी विद्या बहुत ही विदुषी महिला थी, इच्छावती साहित्य कविता और संगीत में कुशल थी। रूक्मिणी व्याकरण, पुराण वेदों और वेदांगों में पारंगत थीं। यही नहीं इस युग में नृत्यांगनाएँ भी थीं जो नृत्य एवं संगीत में निपुण थीं। अनेक स्त्रियों ने शृंगारपरक रचनाएँ की जिनमें प्रवीण राय पटूर, रूपमती और तीन तरंग प्रमुख थी। अनेक हिन्दू स्त्रियों ने विविध विषयों पर कविताओं का सृजन किया। रत्नावली ने दोहों का सृजन किया, उन्नाव में निवास करने वाली खगनिया ने पहेलियों की रचना की, चम्पारानी ने कविताओं का सृजन किया। रीतिकाल में ही पद्माचारिणी प्रमुख कवयित्री हुई जो डिंगल भाषा में रचनाएँ लिखती थी।

रीतिकालीन ग्रामीण समाज में जहाँ एक ओर अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ घर में उचित शिक्षा व्यवस्था से लाभ उठाकर समाज में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रही थीं वहीं दूसरी ओर अनेक कुप्रथाएँ और विकृतियाँ भी विकसित हो गई थीं। जो दिनों-दिन नारी की स्थिति को पतन की ओर अग्रसर कर रही थीं।

पर्दाप्रथा का आगमन मुसलमानों के आगमन के साथ हुआ था। पर्दा करने की प्रथा कन्याओं के युवावस्था से ही प्रारम्भ हो जाती थी और वृद्धावस्था तक करना पड़ता था। सम्पूर्ण मुगल परिवारों की स्त्रियाँ पर्दाप्रथा का कठोरता से पालन करती थीं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ साड़ी के पल्ले से ही घूँघट कर लेती थीं किन्तु उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पूर्ण रूपेण पर्दे में रहती थीं, क्योंकि पर्दा उच्च घराने का प्रतीक माना जाता था। पर्दाप्रथा ने नारी के सम्पूर्ण महत्त्व को नष्ट कर उसे एक रहस्यमयी वस्तु बना दिया था। तत्कालीन समाज में प्रचलित पर्दाप्रथा नारी के अस्तित्व को समाप्त करती जा रही थी-“मुसलमानों के आगमन के साथ पर्दाप्रथा का प्रचार जोरों

से हुआ। 15वीं-16वीं शताब्दी में इसका प्रयोग सर्वसामान्य में होने लगा था। चैतन्य, कबीर, सूर, तुलसी और मीरा इत्यादि की रचनाओं में घूँघट का उल्लेख मिलता है। रीतिकालीन युग तक आते-आते पर्दे या घूँघट का प्रयोग दो रूपों में होने लगा था- प्रथम लज्जा और संकोच की रक्षा के लिए और द्वितीय पर्दे की ओट में प्रेम-व्यापार करने के लिए।<sup>3</sup>

पर्दाप्रथा के अतिरिक्त समाज में बालविवाह प्रथा भी प्रचलित थी। इस कुप्रथा का प्रचार भी मुसलमान शासकों के द्वारा ही हुआ था। मुसलमान शासक कन्याओं का अपहरण कर लेते थे इसी अपमान से बचने के लिए कन्या के माता-पिता कन्याओं का विवाह कम आयु में ही कर देते थे। कन्याओं का विवाह उनके चुनाव पर निर्भर नहीं था क्योंकि उनकी उम्र मात्र 9-10 वर्ष ही होती थी। माता-पिता अपने इच्छानुसार और सामर्थानुसार रिश्ते जोड़ते थे और कन्याएँ कम उम्र में ही घर की चारदीवारी में कैद होकर रह जाती थीं। जैसा कि कहा गया है कि आलोच्यकाल में बालविवाह की परम्परा जड़ पकड़ती जा रही थी। रीतिकवियों ने इस प्रथा का चित्रण बड़े ही सात्विक भाव से किया है-सीख तैहू हुती निसि देखत ही, जिन पै वै भई ही निछावरियाँ। तिन योनि गयौ हुतौ मेरे तबै, सब गाइ उठी बृज डावरियाँ/असुआँ भरि आवत मेरे अओँ, सुमिरे उनकी पग पावरियाँ। कहि को हैं हमारे वे कौन लगै, जिनके संग खेली ही भावरियाँ।<sup>4</sup>

बाल विवाह के साथ ही समाज में दहेजप्रथा भी पनप गई थी यही कारण था कि कन्या के माता-पिता दहेज रूप में वर पक्ष को कुर्सी, मेज, हाथी, घोड़े, विलास की वस्तुएँ, नौकरानियाँ आदि प्रदान करते थे। यह प्रथा इतनी अधिक बढ़ गई थी कि बड़ी-बड़ी धनराशि भी दहेज रूप में दी जाने लगी थी, इस प्रकार दहेज का प्रलोभन वर पक्ष में बढ़ता जा रहा था। धनी लोग तो दहेज देकर अपनी कन्या का विवाह कर देते थे किन्तु निर्धन वर्ग अपनी कन्याओं का विवाह करने में असमर्थ होते जा रहे थे। धीरे-धीरे समाज में कन्या का जन्म श्राप माना जाने लगा। राजपूत लोग कन्या का जन्म अपनी शान के विपरीत मानते थे, इस प्रकार दहेज प्रथा जैसे कुप्रथा का सीधा प्रभाव नारी की स्थिति पर पड़ता था।

रीतिकालीन समाज में जहाँ बचपन में ही कन्याओं का वृद्ध पुरुषों से विवाह करना प्रचलित था वहीं विधवा विवाह निषेध एक कुप्रथा के समान समाज में फैलती जा रही थी। समाज में जिस स्त्री का पति मर जाता था वह स्त्री विधवा कही जाती थी और उसे जीवन के सभी सुखों और आकर्षणों से वंचित रखा जाता था। स्त्रियाँ घर के एक कोने में किसी निर्जीव वस्तु के समान छोटी उम्र से ही अपने जीवन रूपी बोझ को

ढोती जाती थीं। पुरुष संरक्षण का अभाव, समाज में तिरस्कार एवं आर्थिक अभाव के कारण विधवा स्त्रियाँ अवैध रूप से पुरुष वर्ग का शिकार हो जाती थीं परिणामतः वेश्यावृत्ति जैसी कुप्रथा पनपती थी।

रीतिकाल में नारी की स्थिति को और अधिक दयनीय बनाने में सतीप्रथा का भी पूरा सहयोग रहा। तत्कालीन समाज में सती प्रथा अपना स्थान बना चुकी थी। उस समय यदि मुगलों से युद्ध में हिन्दुओं की पराजय हो जाती थी तो उनकी स्त्रियाँ मुगलों को उपहार स्वरूप सौंप दी जाती थीं। स्त्रियाँ इस अपमान से अधिक उचित समझती थीं कि पति के साथ ही उनका अपना जीवन भी किसी प्रकार समाप्त कर दिया जाए। अतः पति की मृत्यु के बाद स्त्रियाँ भी उसी चिन्ता में जलकर भस्म हो जाती थीं। इस कुप्रथा को बढ़ावा देने में हिन्दू जाति का श्रेय अधिक रहा और जब कोई स्त्री सती नहीं होना चाहती थी तब भी उसे बलपूर्वक सती होने के लिए विवश किया जाता था। धार्मिक दृष्टि से सती हो जाने वाली स्त्रियाँ स्वर्ग को प्राप्त करती हैं और विधवा के लिए आत्मदाह ही उसका धर्म है ऐसा मत प्रचलित था। सती प्रथा के अतिरिक्त मध्यकालीन समाज में जौहर प्रथा भी प्रचलित थी, जब राजपूत शासक युद्ध हेतु जाते थे तब उनकी पत्नियाँ जौहर व्रत रखती थीं जब उन्हें पति की मृत्यु या पराजय की सूचना प्राप्त होती थी तब वे सामूहिक रूप से अग्निकुण्ड में अपने प्राणों को नष्ट कर देती थीं। सर्वप्रथम जौहर प्रथा राजस्थान में प्रचलित हुई थी। चितौड़ पर मुगलों का अधिकार हो जाने के पश्चात् वहाँ के जौहर की व्याख्या करते हुए अबुल फजल ने लिखा है-“यह एक प्राचीन प्रथा थी कि चंदन आदि सुगन्धित लकड़ियों का ढेर बनाया जाता था और उसमें सूखी लकड़ी और तेल डाल दिया जाता था। उसके बाद राजपूत लोग कड़े दिल वाले व्यक्तियों की देखरेख में अपनी स्त्रियों को रख देते थे। जैसे ही युद्ध में राजपूतों की पराजय और उनकी मृत्यु का समाचार मिलता था, ये लोग उन असहाय स्त्रियों को जलाकर भस्म कर देते थे।”<sup>5</sup>

जौहर प्रथा के अतिरिक्त दास प्रथा भी प्रचलित थी। इसका प्रमुख कारण समाज में व्याप्त विलासिता थी। मुगल शासक विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करने में रुचि रखते थे और दासियाँ उन्हीं की विलासिता के उपकरण होती थीं। दास प्रथा की तरह ही देवदासी प्रथा भी समाज में विद्यमान थी। देवदासी मन्दिरों में भजन एवं संगीत के लिए रखी जाती थीं किन्तु धीरे-धीरे यह प्रथा भी दूषित होती गई और देवदासियों को वेश्याओं की संज्ञा दी जाने लगी।

इस प्रकार रीतिकालीन समाज में बालविवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, विधवा विवाह निषेध, दहेज प्रथा, जौहर प्रथा, दास

प्रथा एवं देवदासी प्रथा जैसी कुप्रथाओं का प्रचलन हो गया था जिनके फलस्वरूप समाज में भ्रष्टाचार, अनैतिकता, विलासिता और व्यसनों का साम्राज्य स्थापित हो गया था। समाज की स्त्रियाँ इसका शिकार होती थीं। यही कारण था कि स्त्रियों की दशा शोचनीय हो गई थी।

रीतिकालीन समाज की अपेक्षा आधुनिक काल में नारियों की शिक्षा के उचित साधन उपलब्ध हैं आज धनी व निर्धन सभी वर्ग अपनी कन्याओं को शिक्षा प्रदान करने में समर्थ हैं। अनेक कुप्रथाएँ भी अब अपना अस्तित्व समाप्त कर चुकी हैं। नारियाँ अपनी दयनीय और शोचनीय स्थिति से ऊपर उठकर आत्मनिर्भर हो रहीं हैं। किन्तु कहीं न कहीं आज भी नारियाँ भ्रष्टाचार, अनैतिकता और पुरुषों की तानाशाही का शिकार बनती जा रही हैं। यदि इस भ्रष्टाचार, अनैतिकता और तानाशाही

पर अंकुश नहीं लगाया गया तो वह दिन दूर नहीं जब रीतिकालीन समाज की तरह स्त्रियों की दशा पुनः दयनीयता को प्राप्त हो जाएगी।

#### संदर्भ-

1. हिस्ट्री ऑफ राजस्थान, टाइ, जिल्द 2, पृ. 744
2. लाइफ एण्ड कन्डीशन ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, के. एम. अशरफ, पृ. 135-136
3. रीतिकवियों की प्रेम व्यंजना, डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 279
4. श्रृंगार निर्णय, आचार्यदास, छन्द 128
5. अकबरनामा, अनुवाद बेवरिज, जिल्द 5, पृ. 472

प्रवक्ता, एमिटी यूनीवर्सिटी, लखनऊ

## वाङ्मय बुक्स अलीगढ़ (9044918670) का प्रचारित साहित्य

1. एम. फीरोज खान	कथाकार कुसुम अंसल : एक मूल्यांकन	695
2. डॉ. पुष्पा गायकवाड़,	साठोत्तरी हिंदी कहानियों में नारी	395
3. डॉ. राम विलास कांबले	राही मासूम रजा के उपन्यास सामाजिक दृष्टि	550
4. डॉ. दया दीक्षित	मैत्रेयी पुष्पा के कथात्मक आयाम	300
5. डॉ. सुजाता वर्मा	नई सदी और दलित	400
6. डॉ. लखवीर कौर वर्मा	देश विभाजन और नारी की त्रासदी I/II	550/650
7. एम. फीरोज खान	ज़ीरो रोड : एक अध्ययन	350
8. डॉ. यशवंतकर/डॉ. मुख्त्यार	स्त्री विमर्श के विविध आयाम	695
9. डॉ. दीपा कुचेकर	हिंदी नाट्य साहित्य में महिला रचनाकारों ...	800
10. एम. फीरोज खान	कुड़ियाँजान : एक मूल्यांकन	250
11. डॉ. विजय राउत	नासिरा शर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व	500
12. डॉ. कुरे, डॉ. शिंदे	आदिवासी साहित्य विविध आयाम	550
13. डॉ. हेमलता कांचनकर	महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में पुरुष चरित्र	395
14. डॉ. सुमन सिंह	समकालीन कविता में दलित चेतना	350
15. डॉ. सरोज पगारे	हिंदी दलित साहित्य आंदोलन	375
16. डॉ. बाबूराव देसाई	दलित साहित्य शास्त्र विधा और इतिहास	500
17. सूर्य नारायण रणसुभे	कहानीकार कमलेश्वर संदर्भ और प्रकृति ...	300
18. एम. फीरोज खान	हिन्दी के मुस्लिम उपन्यासकार : एक अध्ययन	350
19. डॉ. बाबा साहेब रसूल शेख	मुस्लिम समाज और अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास	350
20. डॉ. सानप शाम	ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना	400
21. डॉ. माधुरी सोनवके	महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में चेतना के प्रवाह	375
22. डॉ. शोभा यशवंते	मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी जीवन	270
23. डॉ. बबनराव बोडके	बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियों में नारी	500
24. डॉ. रमा नवले	मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी	550
25. डॉ. वैशाली देशपांडे	स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार	300
26. डॉ. मंगल कप्पीकेरे	साठोत्तरी हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में नारी	300
27. डॉ. दीपा हावगौराज	साठोत्तरी हिंदी कहानियों में पुरुष चरित्र	250

---

# नारी की मुक्ति

डॉ. गीता सिंह

हमारे शास्त्र में कहा गया है - जहाँ नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं। आज यदि इस बात पर विचार करें तो बेहद अफसोस होगा कि नारी की पूजा तो दूर उसे अपने जैसा इन्सान भी नहीं समझा जाता। इसके लिए साहित्य अधिक जिम्मेदार है। सामन्ती-युग में जो साहित्य रचा गया उसमें स्त्री को भोग्या ही समझा गया-एक वस्तु जो पुरुष के मन को बहलाने के लिए बहुत ज़रूरी हो। सुन्दर खिलौने के समान स्त्रियाँ भी स्वयं को सजाकर थाली में परोसती गईं। वस्तुतः उनके समक्ष दूसरा कोई विकल्प नहीं था परिणामतः स्त्रियों द्वारा स्त्रियों का शोषण प्रारम्भ हुआ। बात वर्चस्व की भी थी-जिन रिश्तों को मधुर होना था बेहद भयंकर स्थिति में पहुँच गए। समाज का दबाव व स्वयं स्त्री-जाति के शोषण ने आम स्त्री के जीवन को प्रभावित किया। ग्रहस्थ-जीवन में स्त्री-पुरुष को रथ के दो पहिए के समान माना गया था पर हुआ यह कि एक पहिया तो रफ्तार पकड़ कर भागने लगा पर दूसरा पहिया वहीं का वहीं पड़ा रहा-जिससे प्राचीन व्यवस्था और परिवार की संकल्पना दोनों चरमरा गई यह स्थिति अपने देश सहित पूरे विश्व में व्याप्त थे। इसमें यह कहना कठिन होगा कौन कितना दोषी है पुरुष, स्त्री या समाज-शायद तीनों ही। दबाव की संस्कृति देर तक नहीं टिकती उसमें विस्फोट होता ही है सो हुआ और पूरे विश्व में स्त्री-विमर्श का पानी उफनने लगा। भारत अपनी पूँछ पकड़े हुए छद्म वेश धारण कर थोड़ा इधर-थोड़ा उधर की बातें करने लगा। स्वयं स्त्रियाँ इस बात के लिए तैयार नहीं थीं कि उनकी चर्चा सरेआम यूँ किया जाये-इन सबका मिला-जुला प्रभाव और बुरा पड़ा। स्त्री मुक्ति की बात उठ पड़ी पर मुक्ति किससे स्वयं से, पुरुष से या उस समाज से जो चारों तरफ व्याप्त है। प्रतिक्रिया का कुप्रभाव और भीतदायी था कि स्त्री मानों और सहजता से प्राप्त वस्तु बन गई हो-वह सोचती रही अपनी रूह उसे सौंप दे पर उसकी नज़र तो बदन से हटी ही नहीं। वस्तुतः आज इन्हीं कशमकश में स्त्री-विमर्श पड़ा हुआ है। पश्चिम में ढोंग शीघ्र टूटे सो शीघ्र निदान भी मिल गया।

वहाँ यदि निराशा-हताशा या कुंठा है तो कम से कम उसके लिए वह स्वयं को जिम्मेदार मानती हैं-शीघ्र निदान और उससे निजाद भी पा लेती है पर भारत अपने कालीन के नीचे सब कुछ दबा और छिपा देना चाहता है वह भी संस्कृति के नाम पर। आए दिन खबरों में हो रहे स्त्री-अत्याचार अपनी चरम पर हैं-कोई वर्ग इससे अछूता नहीं है। दहेज और यौन उत्पीड़न अपने सुरसाई मुख-सा फैलता ही जा रहा है। जीवन मूल्यों को बचाने में लगे शरमायेदार चीज़ों को ढँकना चाह रहे हैं उसका निदान नहीं।

जिस देश ने चींटी तक को प्राणी माना उसकी हत्या को हिंसा माना उस देश में स्त्री ज़िन्दा जला दी जाती है-कन्याभ्रूण पेट में ही मार दिया जाता है- घटाटोप-ढोंग छाया हुआ है कि कन्या पड़ोसी के घर हो पर पुत्र मेरे घर में आए। इस देश को दीर्घकालीन गुलामी की बेड़ियों ने-मानसिक अवकुंठन को जन्म दिया है- अब समय आ गया है कि इस आधी-आबादी की चर्चा से ऊपर उठकर उसका निश्चित विकल्प ढूँढा जाय और वह विकल्प होगा-समान अधिकार। संवेदना। सहधर्मिता। सहचर और सहभागी। आज स्त्री-लेखन देखकर मन और क्षोभ से भर जाता है कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति देना शुरू भी किया है तो कुंठाओं को ही। अभी तक कोई स्वस्थ प्रेरणादाई पथ-प्रदर्शक अभिव्यक्ति नहीं हो पाई है- हो भी कैसे जबतक भीतर से सब निकलकर मन साफ नहीं होगा निर्मल अभिव्यक्ति आएगी कहाँ से। वर्षों से दबा कुचला भाव एक-एक करके लड़खड़ाते हुए निकल रहे हैं-पर इसी में आशा की किरण भी है कि इस उथल-पुथल के बाद शान्त-गम्भीर रूप में जल का ठहराव भी आएगा और शीतल-नीर भी प्राप्त होगा।

इन सभी उथल-पुथल के बीच एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आई है कि स्वयं पुरुष भी यह बदलाव चाहता है-वह अपना ही आधा अंग अपंग नहीं चाहता-साथ-साथ चलना चाहता है-यह शुभ संकेत है। जिन स्त्रियों को यह लगता है कि किसी कद्दावर पुरुष का साथ पकड़कर अपना कद बढ़ा



लेगी उनकी हैसियत किसी बेल से बेहतर नहीं हो सकती-जब तक वे अपने प्राणों का मूल्य नहीं तय करेंगी-जब तक उनका अपना अस्तित्व सबल नहीं होगा यानी श्रमसाध्य तब तक इस स्थिति से उबरना और त्राण पाना असम्भव है। मैं स्वयं एक स्त्री हूँ इसलिए इन सभी विद्रूपताओं से संघर्ष कर रही हूँ और पा रही हूँ कि वस्तुतः हमारी लड़ाई पुरुष से नहीं एक 'विकृत मानसिकता' से है जो दोनों में है-कारण चाहे जो हो पर वस्तु स्थिति यही है।

डॉ. रामविलास शर्मा भी नारी मुक्ति को इसी संदर्भ में देखते हैं-“शहरों में कुछ पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ नारी मुक्ति आन्दोलन चलाती हैं। कैसी मुक्ति चाहती हैं यह तो वही जानें। मैं कैसे कह सकता हूँ कि भारत में स्त्रियों की स्थिति में व्यापक सुधार की आवश्यकता है। इसे सामाजिक आन्दोलन के साथ मिलकर करना चाहिए। उदाहरण के लिए, नारी मुक्ति आन्दोलन को भारत को विदेशी पूँजी से मुक्त कराने सम्बन्धी आन्दोलन से जोड़ा जाए तो इसमें अधिक सफलता मिलेगी।”<sup>1</sup>

हमारा बहुतायत समाज पितृसत्तात्मक समाज था जिसमें गृहलक्ष्मी को गृहदासी समझा गया। स्त्री का आगमन अशुभ माना गया आखिर क्यों? फिर वही बात आएगी कि स्त्रियों के प्रति स्वस्थ मानसिकता कभी नहीं रही। वास्तव में हमारा वर्तमान समाज बहुत बड़ी हिप्पोक्रेसी से गुज़र रहा है इसीलिए पीछे रखकर स्त्रियों को पिछड़ा रहने के लिए बाध्य कर रहा है, हाँ, नयी पीढ़ी अवश्य अपने को तैयार कर रही है-वह अपने साथी के रूप में स्त्रियों को देख रहा है-साथ रहेंगे, साथ-साथ काम करेंगे, साथ जियेंगे, साथ मरेंगे यह मंगल सूचक भाव जो देश की नयी पौध में पनप रहा है, अगले पचास वर्षों में अवश्य फलदायी होगा। आर्थिक स्वतन्त्रता ने स्त्रियों को समान अधिकार दिया है मात्र यही कारण नहीं है और हो भी नहीं सकता, हमारे समाज में यह भी है कि पुरुष की सभी सम्पत्ति की मालकिन उसकी पत्नी है-दोनों समान रूप से धन व्यय करते हैं, समान रूप से वित्त सम्बन्धी निर्णय लेते हैं क्योंकि मानसिकता में परिवर्तन आया है।

जहाँ आत्मीयता होती है वहाँ सम्बन्धों में उतार-चढ़ाव आ सकते हैं पर खटास नहीं। दोनों तत्पर रहते हैं एक-दूसरे की मदद के लिए। जहाँ त्याग की भावना है वहीं सफल जीवन फल-फूल रहा है। अतः एक सीमित क्षेत्र तक आर्थिक स्वतन्त्रता ज़रूरी माना जा सकता है पर स्वयं में शक्ति को भी उर्जस्वित करना होगा। हमारे संविधान में ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं है, जाति-प्रथा के आधार पर भेदभाव नहीं है पर यथार्थ जीवन में अभी भेदभाव है। संविधान में परिवर्तन होने मात्र से वास्तविक जीवन में परिवर्तन नहीं होता। इसलिए महिलाएँ अपनी व्यक्तिगत

लड़ाई से आगे बढ़कर इस सामाजिक परिवर्तन की ओर भी व्यवस्था में बदलाव के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। डॉ. रामविलास शर्मा भी इसी परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं-“सच्चाई यही है कि यथार्थ जीवन में ऊँच-नीच या स्त्री-पुरुष का भेदभाव है। ये सारी विभेदक बातें सामन्ती व्यवस्था की अवशेष है जो हमारे समाज में विद्यमान है। ... स्त्रियों को सिर्फ संविधान व कानून के स्तर पर कोई लड़ाई जीत लेने मात्र से संतुष्ट हो जाना चाहिए। असली लड़ाई तो कहीं और है।”<sup>2</sup>

नारी मुक्ति वस्तुतः विरोध पुरुष का नहीं उसकी मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है। समाज में बहुत सारे पुरुष हैं... अधिक संवेदनशील हैं। श्रमशील महिलाएँ कई मामलों में अधिक स्वतन्त्र हैं इसलिए उनकी समस्याएँ अलग हैं। उच्च वर्ग की महिला भी भिन्न किस्म की समस्याओं से जूझ रही है पर वे मध्यवर्ग की स्त्रियों से अधिक स्वाधीन हैं-एक कारण आर्थिक भी है। मध्यवर्गीय स्त्रियों पर सबसे अधिक आर्थिक व सामाजिक तथा नैतिक दबाव है-यह सब कुछ उन पर आरोपित है- अतः इस दिशा में कार्य करने की आवश्यकता है जहाँ वे अशिक्षा-आर्थिक पराधीनता से मुक्त हो सकें। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा के विचार समझने की आवश्यकता है- “हर स्वाधीनता सीमित होती है। कोई भी स्वतन्त्रता निरपेक्ष नहीं हो सकती। मनुष्य चाहे उछाल मारे और आसमान में पहुँच जाय आकर्षण शक्ति उसे खींच लेगी, वह आकर्षण शक्ति से बंधा हुआ है। ... इसी प्रकार नारी की स्वाधीनता का सवाल है। सामाजिक संदर्भ से अलग हटकर तो नारी स्वाधीनता चरितार्थ नहीं हो सकती। यह ध्यान रखना चाहिए कि नारी की स्वाधीनता से समाज का हित होता है या अहित होता है। पूरे समाज को पूरी शक्ति के साथ आगे बढ़ने का अवसर मिले, इसलिए हमें स्वाधीनता मिलनी चाहिए।... स्वाधीनता स्वच्छन्दता नहीं यह समाज हित में, देश के हित में, स्वयं नारी के हित में।”<sup>3</sup>

उपर्युक्त कथन निश्चित रूप से स्पष्ट है कि कोई भी स्वतन्त्रता निरपेक्ष नहीं होती जैसे जीवन जन्म और मृत्यु के बीच सीमित है। यदि नारी की स्वतन्त्रता समाज हित में है तो उसे पूर्णरूप से स्वतन्त्र अवश्य होना चाहिए। सामाजिक अहित के तौर पर कोई भी स्वाधीनता अधिक देर तक विद्यमान नहीं रह सकती। जहाँ तक नारी-पुरुष के सम्बन्धों की बात है उन्हें इस बात की स्वाधीनता होनी चाहिए कि वे अपना जीवन-साथी चुन सकें। इस प्रकार यह बात ध्यान देने योग्य बात है कि हम किस प्रकार समाज को स्वस्थ रख सकते हैं- यह एक-दूसरे को नत्थी करने से तो बिलकुल ही नहीं आएगा। प्रेमपूर्वक विवाह सम्बन्ध होने चाहिए और यही सामान्य बात है जबकि नत्थी

असामान्य है। नारी स्वतन्त्रता इस रूप में अधिक हो उनको शिक्षा मिलनी चाहिए, पुराने रूढ़ि संस्कारों के कारण लड़कियों के ऊपर जो तरह-तरह के अभिभावक प्रतिबन्ध लगाते हैं वह उचित नहीं इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लड़कियों के कल्याण की कामना नहीं करना चाहिए पर वह अमानुषिक न हो।

आज शिक्षार्थ लड़कियाँ भी कई कुंठाओं से ग्रसित हैं इसका कारण वही है जो उपर्युक्त बातों में बताया गया है- स्वस्थ स्त्री ही स्वस्थ सन्तान को दे सकती है और तभी स्वस्थ समाज की संकल्पना सार्थक होगी- स्वयं डॉ. रामविलास शर्मा इस बात को मानते हैं- “निश्चित ही सड़ी-गली व वर्तमान परिवेश में अपनी उपयोगिता खो चुकी परम्पराओं को खारिज कर देना ही श्रेयस्कर है। इसके बाद ही स्त्री के या किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव है।”<sup>4</sup>

जो लोग यह मानते हैं कि नारी स्वभाव नारी की आजादी में बाधक है-ऐसा अधिकतम लोग मानते हैं-उन्हें यह जान लेना चाहिए कि यह स्वभाव बनता किनके कारण है? इसके पीछे का मनोविज्ञान क्या है? ईर्ष्या कमजोर लोग करते हैं- समर्थ व्यक्ति अपनी रेखा अपने श्रम से लम्बी कर लेता है पर कमजोर वह तो दूसरों की रेखा को कम करके ही स्वयं बढ़ा सकेगा इसलिए एक ईर्ष्या का जहर वह अपने भीतर पाल लेता है एक दिन यह जहर उसे भी मार देता है पर अपने से योग्य को भी परेशानी में डाले रखता है। इस बात को और पुख्ता करके डॉ. रामविलास शर्मा के विचारों से देखते हैं- “नारी स्वभाव जैसी कोई चीज़ नहीं है, न पुरुष स्वभाव जैसी कोई चीज़ होती है। हम हजारों साल से पितृतात्मक समाज में जी रहे हैं। स्त्रियों को यह सिखाया गया है कि तुम्हें इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, मन में जो बात आए उसे कहना नहीं चाहिए लज्जा का अभिनय करना चाहिए। लोग समझते हैं यह स्त्रियों का स्वभाव है। जिसे स्वभाव कहते हैं, वह परिस्थितिजन्य है। परिस्थितियों के बदलने से यह भी बदल जाएगा। ऐसे ही पुरुषों का ऐसा स्वभाव नहीं है जो दूसरों को उत्पीड़ित ही करे, ऐसा नहीं है। यह समाज में रहते हुए परिस्थितियों के कारण हमारे संस्कार बनते हैं, उन संस्कारों को हम सचेत होकर बदल सकते हैं। सबसे बड़ी बात परिस्थितियों को बदलने की कोशिश हमें करनी चाहिए। परिस्थिति बदलने से स्वभाव भी बदल जाएगा।”<sup>5</sup>

प्रकृति में सहस्रों प्राणी हैं पर मनुष्य जाति में दो ही प्राणी है स्त्री और पुरुष। यदि दोनों मिलकर कार्य नहीं करेंगे तो हमारा समाज अर्धविकसित समाज हो रहेगा-एक दूसरे को अपने जैसा ही प्राणी मानकर एक-दूसरे को व्यवहार करने की आवश्यकता है-जो बात एक को अच्छी या बुरी लगती है दूसरे को भी वैसी ही लगती है- खुद जिओ औरों को भी जीने दो-

वाला सिद्धान्त होना चाहिए। स्त्री मात्र शरीर नहीं है उसमें भी मन का एक कोना है जहाँ मान-सम्मान स्नेह-आदर की आवश्यकता होती है बल्कि संवेदना की मात्रा उसमें अधिक है-उसके मातृत्व-भाव के कारण फिर टकराहट किस बात की और क्यू? इसलिए वे लोग सदैव इस बात की समीक्षा में सदैव लगे रहते हैं कि कविताओं में स्त्री का आवागमन कितना है और क्यों हैं वे यह जान लें कि स्त्री वही नहीं है जो खांचे आपने बना रखे हैं स्त्री की विराटता किसी पुरुष से कम नहीं है जिसमें त्याग कूट-कूट कर भरा हो उसके आगे तो बड़े-बड़े तपस्वी समाज के लिए एक आशा की किरण की तरह देखते हैं-साहित्य का तो आधार ही है स्त्री। इतिहास साक्षी है जब-जब स्त्री को वस्तु समझा गया-सम्पूर्ण समाज का विध्वंस हुआ। स्त्री मधुर साहचर्य की आकांक्षी है क्या यह भी अधिक है उसकी माँग जो पूरी नहीं की जा सकती! इस बात को और स्पष्ट रूप से डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं-“रूपतरंग” पढ़ो। उसमें बहुत स्त्रियाँ हैं, कहीं पड़ोसी के रूप में, कहीं खेत में काम करती हुई, कहीं लेखक की माँ के रूप में।... यह तो नहीं कहता कि मैंने नारी के सभी रूपों को देखा है, लेकिन मैंने काफी रूपों को देखा है और मेरी कविताओं में नायिका-भेद नहीं है। नायिका-भेद हो या न हो, नायिका कौन है? उसे नायिका तुम कह सकती हो जो खेत में काम करने वाली लड़की मुझे अच्छी लगी है और मैं उसकी क्रियाओं का वर्णन करना हूँ लेकिन रीतिवादी अर्थ में नायिका-भेद नहीं है।”<sup>6</sup>

आज जब भी परिवार की बात आती है इसे बड़ी आसानी से स्त्री की ओर कर दिया जाता है-माँ के प्यार व पिता के देखभाल से बच्चा समाज का नागरिक बनता है, अतः परिवार की बात जब भी हो स्त्री-पुरुष दोनों उसके धुरी में हों। दोनों का कर्मक्षेत्र भले ही भिन्न हो पर लक्ष्य एक ही होना चाहिए। प्राचीन काल में मनुष्य की आदिम आवश्यकताओं में थी परिवार की संकल्पना-जिसमें व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास होता है यह प्रथम इकाई ही आगे चलकर समाज का रूप ग्रहण करती है। डॉ. रामविलास की सोच मार्क्सवादी है उनकी दृष्टि में परिवार क्या है, देखते हैं- “मेरा दृष्टिकोण तो मार्क्सवादी है और मैं मानता हूँ कि मार्क्सवाद को परिवार की समस्याओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जो परिवार का ढाँचा चला आ रहा है, उसे हम कैसे बदलें। परिवार में केवल नारी ही नहीं बूढ़े आदमी भी हैं, उनकी समस्याओं का हल क्या हो, बच्चों के साथ उनके कैसे सम्बन्ध हों, सास और बहू, भाई और बहन का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए-इन सबके बारे में मैंने सोचा। बहुत संक्षेप में बात करूँ तो जहाँ तक हो, समानता के आधार पर सम्बन्ध बनाना चाहिए और जो लोग सोचते हैं कि अलग रहने

में बड़ा सुख मिलता है, मैं इसका विरोध करता हूँ! मैं कहता हूँ अगर तुममें समानता का भाव है तो जितने अधिक लोग मिलकर रह सको, उतना ही अच्छा है। मैं पुराने संयुक्त परिवार का पक्षपाती नहीं हूँ जहाँ एक सरदारनुमा घर का शासक है और सब उसके शासन के अन्तर्गत रहते हैं।”

उपयुक्त विचार डॉ. रामविलास शर्मा के हैं जिन्हें परिवार में मिलकर रहना अधिक उपर्युक्त लगता है वनस्पति अलग-अलग रहने के, पर साथ में वह इस बात पर भी जोर देते हैं कि परिवार में शासक-शासित वाली भावना नहीं होना चाहिए। परिवार में आपसी जनतान्त्रिक व्यवहार होना चाहिए जहाँ सबको अपनी बात कहने का अवसर और अपने व्यक्तिगत निर्णयों की थोड़ी छूट होनी चाहिए-आपसी संवाद सदैव होते रहने चाहिए ताकि किसी में कोई कुंठा या विद्रोह दोनों-न पनपे। अपनी कमाई को व्यवस्थित खर्च करें तथा सब मिलकर सहयोग भावना से काम करें। इस प्रकार शक्ति बढ़ेगी और सामूहिकता की भावना पनपेगी- “साथ मिलकर रहने से शक्ति का अपव्यय नहीं होगा, लेकिन यह संगठन की क्षमता हमारे अन्दर नहीं है क्योंकि हमारे अन्दर अहंकार और स्वार्थ बहुत ज्यादा है। हमें स्थायी मानव सम्बन्ध बनाने की ओर अपनी मानसिकता विकसित करनी चाहिए। तभी समाज की वर्तमान स्थिति में सुधारगत परिवर्तन परिलक्षित होगा और समाज का स्त्री के प्रति नज़रिया भी अधिक उदार हो सकेगा।”<sup>8</sup>

बहुत ठीक कहा है डॉ. शर्मा ने कि स्वार्थ और अहंकार के कारण सम्बद्ध होने की भावना को कुचल कर रख दिया है।

वैसे तो हम कहते हैं पूरी वसुधा ही परिवार है-पर किस मूल्य पर! यह बताने की आवश्यकता नहीं है- मेरा तात्पर्य या उद्देश्य सदैव आशावादी बातों को लिखने का होता है-पर सच्चाई से कब तक मुख मोड़ा जा सकता है वह भी लेखक के लिए तो असम्भव है अतः बहुत ज़रूरी है कि अपनी मुक्ति की बात नारी अवश्य करे पर वह पलायन वाली स्थिति न हो-संघर्ष व समन्वय की बात हो क्योंकि ‘अतिशय रगड़ करे जो कोई अनल प्रगट चन्दन ते होई’ - इसमें आशा की जो चिनगारी है वह प्रदीप्त हो भारत की सन्तानें एक स्वस्थ मानसिकता वाली माँ के हों-स्त्री जीवन संगिनी हो, दुःख और सुख दोनों की यह श्वास्तिवाचन नहीं है - उज्ज्वल और भावी भारत के लिए एक स्त्री का वर्षों से सजोया हुआ सपना है।

#### संदर्भ-

1. ‘मेरे साक्षात्कार’ डॉ. रामविलास शर्मा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 314
2. वही, पृ. 315
3. वही, पृ. 316
4. वही, पृ. 317
5. वही, पृ. 318
6. वही, पृ. 318
7. वही, पृ. 319
8. वही, पृ. 319

12/S1 जी. जी. काम्प्लेक्स, सेमिनरी हिल्स, नागपुर - 440006

## वाङ्मय बुक्स अलीगढ़ (9044918670) का प्रचारित साहित्य

28.	डॉ. अमरीश	बोगदे से बाहर(कथाकार नासिरा शर्मा पर केंद्रित)	400
29.	डॉ. जोगिंद कुमार	दलित चेतना के सन्दर्भ में कथाकार ओमप्रकाश	495
30.	डॉ. रघुराज गणपति	महिला आत्मकथा लेखन में नारी	295
31.	डॉ. ललिता कौशल	हिन्दी दलित साहित्य और चिन्तन	195
32.	दत्तात्रय मुरूपकर	पिंजरे की परिधि से बाहर का आत्मकथा	195
33.	डॉ. साताप्ता शामराव	शिवानी के लघु उपन्यासों में प्रतिबिंबित समाज	200
34.	डॉ. ठाकुर विजय सिंह	अज्ञेय के प्रतिनिधि कहानियों में नारी	200
35.	डॉ. रघुनाथ गणपति	हिन्दी मराठी महिला नाट्य लेखन में नारी	300
36.	डॉ. एन. सिंह	दलित साहित्य परम्परा और विन्यास	495
37.	डॉ. सरोज पगारे	हिन्दी दलित साहित्य आन्दोलन	375
38.	डॉ. सानप शाम	ममता कालिया के कथा साहित्य में नारी चेतना	400
39.	एम. फीरोज खान	दलित विमर्श और हम	295
40.	डॉ. मंगल	साठोत्तरी हिन्दी लेखिकाओं की कहानियों नारी	300
41.	एम. फीरोज खान	नई सदी में कबीर	250
42.	डॉ. सुरेश	हिन्दी और मराठी दलित साहित्य : तुलनात्मक	450
43.	डॉ. ओहाल मोहन	कथाकार नासिरा शर्मा	450

---

# दलित साहित्य और साहित्यकार एक विवेचनात्मक विश्लेषण

डॉ. अमित शुक्ल

दलित साहित्य की वेदना में वेदना ही नहीं वह बहिष्कृत समाज की वेदना है। डॉ. रमणिका गुप्ता दलित साहित्य को परिभाषित करते हुए कहती हैं कि दलित साहित्य की परिभाषायें उसकी सीमायें उतनी ही हैं जितनी मनुष्यता की सीमाएँ साथ ही वह मानती हैं कि इसे मूलधारा का साहित्य कहा जाना चाहिए क्योंकि वह आज की सोच का प्रतिनिधित्व करता है। दलित साहित्य और वर्तमान में जो हो रहा है उन पर दृष्टि डालते हुए वह कह उठते हैं कि समूचे विश्व में आज भी गरीबी, जातिवाद, भेदभाव तथा अछूत होने की पीड़ा का अभिशाप जारी है। इस बदली हुयी तकनीकी की सदी में ग्लोबल विश्व में आम आदमी अभी भी गुलामी से उभरा नहीं है। गुलामी और समाज में दलित होना उसके लिए मानसिक, सामाजिक, संताप का कारण तो है ही इसके साथ ही उस समाज की उन तमाम सहूलतों से भी उसे सदियों से मरहूम रखा गया है। आज हिन्दी में दलित साहित्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सजग है एवं अपने कर्तव्यों की समझ उन्हें पूरी इमानदारी के साथ निभाने की चेष्टा कर रहा है। यह दलित साहित्य ही है जिसने सामाजिक विषमता एवं क्रूरता का बोध कराया है।<sup>1</sup> दलित साहित्य के प्रारंभ की ओर दृष्टि करें तो ज्ञात होता है कि, दलित साहित्य का आरंभ 19वीं सदी में हुआ तब ज्योतिराव फुले ने दलित शब्द का प्रयोग किया था। शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अस्पृश्य आदि नामों से जुड़ी दुखद यात्रा के बाद आज दलित शब्द अपने साथ वैचारिक आधार लेकर अपने वजूद और अपनी उपस्थिति का बोध कराने में सफल हुआ है। दलित विमर्श का लक्ष्य है स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारा दलित विमर्श का सैद्धांतिक पक्ष महात्मा फुले एवं बाबा साहब अंबेडकर के विचारों से समृद्ध हुआ है। ज्योतिराव फुले जिन्हें जाति विरोधी आंदोलनों का अग्रदूत कहा जा सकता है। 1840 में उन्होंने मुंबई में अछूतों के लिए स्कूल खोला एवं 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। जिसका उद्देश्य शूद्र और अतिशूद्र कही जाने वाली जातियों को अपने मानवताधिकारों के प्रति जागरूक

बनाना और उन्हें बाध्य धर्मशास्त्रों में प्रतिपादक विचारों के प्रभाव से मुक्त करना था। इसी सन में महात्मा फुले की लिखी गुलाम गिरी को वास्तव में शूद्रों-अतिशूद्रों की मुक्ति का घोषणा पत्र माना जाता है। अंबेडकर जी ने इस चेतना को राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाया है। डॉ. अंबेडकर ने तीन सूत्र-शिक्षा, संघर्ष और संगठन दलित आंदोलनों के मूलाधार हैं। डॉ. अंबेडकर केवल दलितों के सर्वप्रमुख राजनेता ही नहीं बल्कि मौलिक चिंतक तथा प्रकाण्ड विद्वान थे। वे ईमानदार राजनीतिज्ञ, विचारक और दूरदर्शी थे। वे जाति प्रथा को समूल, उखाड़ फेंकना चाहते थे। डॉ. अंबेडकर के देहावसन के पश्चात् 1970 में महाराष्ट्र में दलित आंदोलन की लहर पुनर्जीवित हुयी। डॉ. अंबेडकर, महात्मा फुले के विचार चिंतन से समृद्ध होकर एक अन्य परिवर्तनकारी संघर्षों में परिणित होकर महाराष्ट्र दलित पैंथर तथा दलित साहित्य आंदोलन को एक आकार मिला जिसका प्रभाव राष्ट्रीय स्तर पर नज़र आने लगा। साहित्य में दलित आंदोलन का स्वरूप यहीं से प्रारंभ होता है। डॉ. चन्द्रकुमार बरठे ने दलित साहित्य आंदोलन पुस्तक में अपने विचार रखते हुए स्पष्ट किया है दलित पैंथर्स ने अपने घोषणा पत्र में दलित को परिभाषित करते हुए कहा है-दलित का अर्थ है अनुसूचित जाति, बौद्ध कामगार, भूमिहीन मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी और नारी समाज। यह दृष्टि अपनी व्यापकता में मनुष्य की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है।<sup>2</sup> दलित अस्मिता बोधक शब्द है, दलित कोई जाति नहीं परिवर्तन और क्रांति के साथ उत्पीड़न और शोषण का भी बोध कराता है। दलित लेखक इस शब्द के साथ सहानुभूति के बजाय दायित्वबोध के अहसास को जोड़ते हैं। ओमप्रकाश, बाल्मीकि के विचार इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं दलित चेतना का सरोकार मैं कौन हूँ, से बहुत गहरे तक जुड़ा है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। दलित चिंतक दलित समस्या को राष्ट्रीय समस्या एवं दलित

मुक्ति के प्रश्न को राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न मानते हैं दलित विमर्श उन सारे सवालियों के इर्द-गिर्द घूमता है, जिनका संबंध भेदभाव, अलगाव से हैं। चाहे वह जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, लिंग या धर्म का भेदभाव हो। दलित और गैर दलित इन दो वर्गों में बंटा वर्तमान हिन्दी साहित्य चिंतन विवादों से जकड़ा कई प्रश्न खड़ा करता है। एक वर्ग का मानना है कि कोई भी व्यक्ति दलित की पीड़ा व्यक्त करें वह दलित साहित्य होगा। जबकि दूसरा वर्ग यह मानता है कि वही वास्तविक दलित लेखक है, जिसने सदियों से शोषण, अत्याचार, अमानवीयता की लम्बी दास्तान झेली है। हमारे साहित्य की संरचना और जड़ता से यह विवाद गहरा हुआ है दलित एवं गैरदलित साहित्यकारों के उपजे इस विवाद को हाशिए पर रखकर यदि देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि दलित विमर्श की प्रभावकारी स्थिति स्पष्ट है। अम्बेडकर व फूले के दर्शन और विचारों से समृद्ध इस दृष्टि में आत्मसम्मान की प्रमुखता है तथा पूर्ण समता पर आधारित समाज की कल्पना इस विमर्श एवं इस साहित्य का मुख्य ध्येय है। हिन्दी दलित साहित्य ने भारतीय साहित्य को नई दिशा दी है दलित रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में दलित जीवन की प्रामाणिकता अभिव्यक्ति की है। वर्ण व्यवस्था ने उन्हें सदियों से 'सेवक' अथवा 'दास' की भूमिका में रखा। इसी व्यवस्था ने घृणा पर आधारित समाज व्यवस्था को जन्म दिया। दलितों को मानवाधिकार से वंचित रखा उनसे संपत्ति एवं शिक्षा के अधिकार छीन लिए समाज में अपमानपूर्वक जीने को मजबूर किया। उनकी विकास के सारे रास्ते बंद कर दिए। शोषण के सारे दरवाजे खोल दिए उन्हें अपनी बस्तियों से बाहर कर दिया। अपना जूठन खिलाया। अपना उतरन पहनाया, उनका आचार संहिता निश्चित की गयी। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। आखिर इस दर्पण में सदियों से शोषित दलितों के प्रतिबिम्ब कहाँ हैं ? गैर दलित साहित्य में दलित वर्ग की दुर्दर्शा, अस्पृश्यता के प्रति घृणा, उसके प्रति विरोध एवं उसे इसमें दलित वर्ग की पीड़ा अभिव्यक्त नहीं हुयी है। यह विडंबना ही है कि हिन्दी फ़िल्मों में भी वर्णव्यवस्था की क्रूरता का चित्रण ही नहीं किया गया है, दलित साहित्य का मूल उद्देश्य है वर्णाश्रम व्यवस्था उन्मूलन तथा उसके स्थान पर समतावादी समाज व्यवस्था का निर्माण। हिन्दी साहित्य चाहे काव्य हो या गद्य वर्णव्यवस्था अस्पृश्यता का तीव्र विरोध किया गया है। ऐसा विरोध आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसके पूर्व कभी नहीं देखने को मिला परन्तु अब दलित साहित्य में इन पर ध्यान दिया जा रहा है। दलित साहित्य में आत्मकथाएँ भी दृष्टिगोचर हो रही हैं, ये समकालीन हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि हुई। दलित आत्मकथाएँ केवल अपने लेखकों के

जीवन की घटनाओं का विवरण नहीं देती हैं, बल्कि ये रचनाएँ सम्पूर्ण भारतीय समाज विशेष रूप से हिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दू समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, जातिगत, घृणा, हिंसा, शोषण आदि प्रामाणिकता के साथ उद्घाटित करती हैं। दलित आत्म कथाकार जब दलित जीवन त्रासदी को रचनात्मक रूप प्रदान करता है तो वहाँ सम्पूर्ण दलित समुदाय के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक सरोकारों को उजागर करता है। इस प्रकार दलित आत्मकथाएँ वर्णित समस्याएँ व्यक्तिगत नहीं अपितु समुदायगत संदर्भों से जुड़ती हैं।<sup>1</sup> दलित लेखकों के लिए बीते हुए कल को याद करके जीवन के त्रासद अनुभव को रचनात्मक रूप देना एक असहनीय पीड़ा को फिर से भोगने जैसा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि दलित साहित्य के अंतर्गत दलित आत्मकथाएँ दलित जीवनानुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। दलित साहित्य लेखन में कार्य अत्यंत तीव्र गति से चल रहा है। वास्तव में दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। कोई कहता है कि जिस साहित्य में दलित प्रतीत एवं सही एहसास का तीव्रता के साथ वर्णन किया हो वही दलित साहित्य कहलाने का अधिकारी है ऐसे प्रश्न विमर्श के कारण बनते हैं कि क्या हिन्दी साहित्य को दलित साहित्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। दलित साहित्य का उत्तरदायित्व तभी पूरा होगा जब वह जाति-पाँति, ऊँच-नीच वर्ग आधारित समाज व्यवस्था से मुक्त होकर सोचे। दलित साहित्य की विचारधारा में मनुष्य की संवेदना, स्वतंत्रता, भाईचारा, समता का महत्त्व सबसे ऊपर है। हिन्दी साहित्य की सुदृढ़ आधार ही लोक मंगल की भावना है। विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पंदन ध्वनित करने वाला हिन्दी साहित्य समाज की चेतना में ही सांस लेता है, जनता के सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि का चित्रण करते हुए वह जीवन की व्याख्या करता है देखा जाए तो वर्तमान समय में भारत के दलितों में साहित्य लेखन की वजह से पहले से अधिक जागरुकता आ गयी है।<sup>1</sup>

### दलित साहित्य, परम्परा और अम्बेडकरवाद

ऐसा नहीं कि बाबा साहब अम्बेडकर के पूर्व दलित साहित्य की कोई परम्परा नहीं रही। दलित साहित्य की प्रेरणा विदेशी या आयातित नहीं है। उसका उत्स भारत की मिट्टी और भारतीय संत साहित्य में है। नाथ और सिद्ध साहित्य परम्परा से, तथागत बुद्ध, कबीर, रैदास, नानक, नामदेव, दादू, धुनिया, महात्मा फूले, डॉ. अम्बेडकर आदि का साहित्य उनका अपना और प्रेरणास्रोत है, 'शूदा को पांडे, सब एक मटी के भांडे' से लेकर सन् 1914 हीरा डोम की शिकायत कविता जो सरस्वती में छपी, दलित सोच की आधुनिक पहली रचना मानी

जाती है। तेलगू कवि जासुआ से लेकर आज के कवि राजेश जोशी कहते हैं- “मेरे मर जाने के बाद, जब लिखा जाय कि मैं हिन्दू था तो लिखा जाय साफ-साफ कि मैं शर्मिन्दा था।” तक यह परम्परा अपना बोध करा रही है। फिर तो मराठी दलित साहित्य ने अपनी जड़ें बहुत गहरी जमा ली और इसमें थोड़ा आगे-पीछे हिन्दी में भी दलित साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा जाने लगा। अम्बेडकरवादी मानते हैं कि मानव मुक्ति को सही अर्थों में प्रतिपादित प्रोत्साहित करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला, वंश-वर्ण और जाति पर कुठाराघात करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। मनुष्यता दलित साहित्य का असली धर्म है। यही डॉ. अम्बेडकर का दर्शन है जिससे मराठी दलित साहित्यकारों ने प्रेरणा ली। डॉ. लिम्बाले का कहना है कि दलित साहित्य में समीक्षकों का विशेष अभाव रहा है। चाहे मराठी में हो या हिन्दी में। हिन्दी क्षेत्र में तो दलित साहित्य की और भी उपेक्षा की गयी। यहाँ तो कबीर की जगह तुलसी और महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन की जगह निराला को महिमा मंडित करने की होड़ लगी रही। जबकि दलित साहित्य की समीक्षा समाज शास्त्रीय दृष्टि से करनी चाहिए न कि परम्परागत समीक्षा सिद्धान्तों के तहत। दलित समीक्षा दलित साहित्य में साहित्यिक विशेषताओं की ओर ध्यान न देकर सामाजिक व्यवस्था पर ही अधिक विचार करती है और तब दलित साहित्य को आधुनिक समीक्षा की अपेक्षा समाजशास्त्रीय प्रभावी समीक्षकों की आवश्यकता है।<sup>5</sup>

### दलित साहित्य और मार्क्सवाद

मार्क्सवाद सम्पूर्णतः आर्थिक दर्शन है। रूस में लेनिन स्टेलिन ने और चीन में माओ ने उसका विकास अपनी परिस्थितियों में किया। पश्चिम के मार्क्सवादियों ने भी अपने नये विचार जोड़े। किन्तु भारतीय साम्यवादियों ने अपने देश में हिन्दू समाज व्यवस्था के संदर्भ में मार्क्सवाद के आधार पर उसका कोई परीक्षण या विकास नहीं किया। यहाँ के मार्क्सवादियों ने जाति प्रथा और छुआछूत को कोई समस्या ही नहीं माना। यहाँ लोगों ने राजनैतिक और आर्थिक आंदोलन तो चलाये पर सामाजिक क्रांति और संस्कृति से उसे नहीं जोड़ा, दलित जहाँ के तहाँ पड़े रह गये। यही कारण है कि जहाँ के मार्क्सवादी दलितों के विश्वासपात्र नहीं बन पाये। भारतीय समाज में विषमता केवल पूँजीवाद के फलस्वरूप नहीं हिन्दू धर्म द्वारा निर्मित जाति व्यवस्था मूलक भेदभाव से ही अधिक है। डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक दर्शन से प्रेरित दलित साहित्यकारों का मानना है कि जहाँ आर्थिक बराबरी व सामाजिक बराबरी की लड़ाई साथ-साथ लड़नी होगी।<sup>6</sup>

### दलित साहित्य और नीग्रो साहित्य

भारतीय दलित साहित्य और अमेरिका नीग्रो साहित्य दोनों सामाजिक क्रांति से जुड़े हैं। श्वेतों ने काले नीग्रोज के लिये अलग आवास, भोजन, गृह, बस, रेल, शिक्षा की व्यवस्था की। भारतीय अस्पृश्यों को भी उसी प्रकार गाँव के बाहर रखा गया। पनघट और श्मशान भूमि तक अलग। हाँ हिन्दू धर्म व्यवस्था में शूद्रों को शिक्षा का अधिकार न होने से अलग शिक्षा संस्थान का प्रश्न ही नहीं था। नीग्रो शूद्रों की अपेक्षा भाग्यशाली रहे कि 1865 में उन्हें सेपरेट वट इक्वल का अधिकार मिल गया। किन्तु यहाँ दलित सेपरेट रहकर भी इक्वल कभी नहीं माने गये। कालाराम मंदिर सत्याग्रह के बाद जब सावरकर ने दलितों के लिए पृथक् मंदिर निर्माण की योजना रखी तो डॉ. अम्बेडकर ने इस आधार पर विरोध किया कि “यदि अलग व्यवस्था से अस्पृश्य स्पृश्य होते तो अकूत मातंग, महार, चमार, डोमार बस्तियाँ तो अनादिकाल से आज तक अलग हैं, पर उसका परिणाम क्या रहा? बाबा साहब ने इसकी भूमिका ‘हू वेयर शूद्राज’ और ‘द अनटचवेल्स’ में विषद रूप से दी है। जैसे नीग्रो ने नीग्रो शब्द का उपहास किया और स्वयं को ब्लैक कहने लगे वैसे ही दलितों ने ‘हरिजन’ शब्द को नकार कर स्वयं को दलित कहा। नीग्रोज ने मालिक से मिले अपने नाम त्याग दिये वैसे दलितों ने अमंगल सूचक नामों को उतार फेंका नीग्रो ने गुलामी से पिण्ड छुड़ाने के लिए धर्मान्तरण किया और दलितों ने भी हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्ध धर्म अंगीकार किया। पर भारतीय शूद्र नीग्रो से भी अधिक गुलाम रहा है। क्योंकि नीग्रो गुलाम का एक ही मालिक होता है। जबकि शूद्र सार्वजनिक ऊपर के तीन वर्णों का गुलाम है।

**दलित और नीग्रो साहित्य की तुलना से निष्कर्ष निकलते हैं-** 1. नीग्रो और दलित लेखक अपनी अस्मिता की खोज कर रहे हैं। 2. दोनों का साहित्य जीवनवादी है। एवं 3. दोनों की भाषा सांस्कृतिक विद्रोह की भाषा है।

इस प्रकार दोनों के अनुभव के घाव बहुत गहरे हैं। तभी वे कहते हैं कि अंधकूप में गिरे छटपटाते व्यक्ति की पीड़ा और कूप की भीट पर खड़े बचाओ-बचाओ की गुहार लगाते व्यक्ति की सहानुभूति में अन्तर तो होगा ही, भोगा हुआ यथार्थ और ओढ़ा हुआ यथार्थ एक से कैसे हो सकते हैं। दलित और नीग्रो साहित्य की समीक्षायें अपने साहित्य को मानव मुक्ति आंदोलन रूप में देखती हैं।

### दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

दलित साहित्य या किसी भी साहित्य में कितना दम है, उसमें

कितना सौन्दर्य है इसकी कसौटी तो समीक्षा ही हो सकती है। किन्तु दलित लेखकों का मत है कि सफेदपोश समीक्षा दलित साहित्य का समुचित मूल्यांकन नहीं करती। मराठी समीक्षा ने संतों से शूद्रों तक की साहित्यिक अभिव्यक्ति को जाँचा और परखा है और माना है कि जिस प्रकार ग्रामीण साहित्य आँचलिक साहित्य, आदिवासी साहित्य, जैन और बौद्ध साहित्य है, उस प्रकार दलित साहित्य को मान्यता देने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। केवल यह कहकर काम नहीं चलेगा कि साहित्य न दलित होता और न ही अभिजात्य। दलित जीवन की संवेदनापूर्ण प्रतीति को रखकर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। केवल दलित ही दलित साहित्य लिख सकते हैं यह पूर्ण नहीं आंशिक सत्य हो सकता है। दलितेतर लेखक भी दलित साहित्य लिख सकते हैं। कोई लेखक का एकाधिकार नहीं ले सकता। हकीकत यह है कि आप लेखन की जाति देखिये, लेखक की नहीं। भारतीय वाङ्मय में सौन्दर्य के संबंध में सत्यं शिवं सुन्दरम् की परिकल्पना की गयी है। माना गया है कि जो सत्य है वही शिव (कल्याण) है और जो शिव है वही सुन्दर है पर हुआ यह है कि भारतीय साहित्य में असत्य को सत्य, अशिव को शिव और असुन्दर को सुन्दर की मान्यता दे दी गयी। ...दलित साहित्य के उपर्युक्त पुरोधों के अतिरिक्त अन्य उपन्यासकारों ने भी दलित साहित्य में अपनी लेखनी चलायी है। उन्होंने दलितों के प्रति अपनी सहानुभूति दिखायी है, हिन्दी में प्रेमचन्द के कथा-साहित्य से सहानुभूतिपूर्ण दलित-विमर्श आरम्भ हुआ और अनेक समकालीन तथा परवर्ती उपन्यासकारों ने दलित का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया। आज़ादी के बाद भैरव प्रसाद गुप्त और नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जमींदारों द्वारा दलित वर्ग के पात्रों के आर्थिक और दैहिक शोषण का जिसमें उस वर्ग की स्त्रियों का यौन शोषण भी है, गहरी सहानुभूति और वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ अंकन किया है। नागार्जुन के 'बलचमना' उपन्यास का बलचमना और 'वरुण के बेटे' के मछुआरे पात्र दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, और अपने शोषकों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाते हैं।" ....सन् 1956 में हिमांशु श्रीवास्तव का उपन्यास 'लोहे के पंख' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन का चित्रण है, गाँव का अभाव, तनाव, दुख, निरक्षरता तथा अंध विश्वास का दर्दनाक चित्रण किया गया है। सन् 1957 में ही रंगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में राजस्थान के नटों का जीवन चित्रित है, लेखक ने नटों के सामाजिक जीवन, आचार-विचार, कायदे-कानून तथा यौन-नैतिकता का यथार्थ चित्र अंकित किया है।" रंगेय राघव 'धरती मेरा घर' उपन्यास में लोहपीठों की दुखद स्थिति

का चित्रण किया है। लेखक का स्वर सहानुभूतिपूर्वक है। सन् 1966 में शैलेश मटियानी का 'कोई अजनबी नहीं' उपन्यास प्रकाशित हुआ जो दिल्ली नगर की गन्दी छुत्ते बस्तियों में शर्मनाक जीवन बिताने वाले तथा अपमानित होकर जीने के लिए लाचार दलितों का स्वरूप प्रस्तुत करता है। सन् 1974 में जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर' प्रकाशित हुआ। जिसमें "मुम्बई महानगर की उस ज़िन्दगी का चित्रण किया गया है, जो सड़कों के किनारे, पुलों पर, गटरों, सीलन और सड़ांध से भरी झोपड़ियों में दम तोड़ती है, जहाँ छुत्ते, रोगों से पीड़ित आवारा औरतें, भीख माँगने वाले कोढ़ी और अपाहिज, जूठन पर पलने वाले असहाय बच्चे, चोर, जुआरी आदि रहते हैं। यह दुनिया पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अनिवार्य देन है, जो ठीक उसकी आलीशान ज़िन्दगी के नीचे बिलबिलाती रहती है और एक तरफ अपने अस्तित्व के लिए भीख, चोरी, जुआ, अस्मत्फरोशी आदि का सहारा लेती है और दूसरी तरफ सभ्य दुनिया के पहरेदार, पुलिस के अत्याचारों का शिकार बनती है।" राजेन्द्र अवस्थी के दो चर्चित उपन्यास 'सूरज किरन छॉव' और जंगल के फूल' में लेखक ने बस्तर के गोंड जाति के असहाय, अशिक्षित तथा अंधविश्वास का चित्रण किया है। सन् 1972 में जगदीश चन्द्र का 'धरती धन न अपना' उपन्यास प्रकाशित हुआ तथा 1994 में 'नरक कुण्ड में वास' उपन्यास प्रकाशित हुआ। "जगदीश चन्द्र का उपन्यास 'धरती धन न अपना' पंजाब के एक गाँव की कथा को उठाकर अनपढ़ चमार जाति के जीवन का ऐसा संश्लिष्ट चित्रण है कि पाठक की अनुभव सम्पदा का विस्तार होता है, एक प्रकार से करोड़ों हरिजनों की समस्याओं और व्यथा का समकालीन दस्तावेज कहा जा सकता है। हिन्दी का यह प्रथम उपन्यास है, जो हरिजनों की व्यथा को इतने व्यापक और तीव्र संवेदनाओं से साहित्य में उजागर करता है।" सन् 1975 में गोपाल उपाध्याय का 'एक टुकड़ा इतिहास' उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसकी नायिका चनुली ब्राह्मणी शूद्र से शादी कर दलित अभिशाप से मुक्त होना चाहती है, पर वह उससे मुक्त नहीं हो पाती है और जीवन भर दलितों के उत्थान के लिए सवर्णों से लड़ती रहती है। सन् 1979 में शैलेश मटियानी का 'सर्पगन्धा' उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसमें दलित वर्ग की सामाजिक चेतना को प्रस्तुत किया गया है तथा आरक्षण के मुद्दे को गहरी सहानुभूति और संवेदना के साथ उठाया गया है। सन् 1989 में शिव प्रसाद सिंह का 'शैलूष' उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसमें विन्ध्य क्षेत्र के नटों के व्यक्तित्व को उजागर किया गया है। सन् 1990 में संजीव का 'धार' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसकी नायिका दलित-वर्ग की मैना है, जो बाहर से घृणित पर अन्दर से संवेदनशील,

समझदार, ईमानदार तथा अन्याय का प्रतिकार करने वाली है। सन् 2000 में मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरा' छपा। जिसमें "बुन्देलखण्ड क्षेत्र में रहने वाली 'कबूतरा' जाति के यथार्थ जीवन का चित्रण किया गया है जिन्हें औपनिवेशिक शासन में जरायम पेशा जाति घोषित कर न केवल तथाकथित सभ्य समाज की नज़रों में उपेक्षा और घृणा का पात्र वरन् पुलिस के अत्याचार का नरम चारा भी बना दिया था। यद्यपि आज़ादी के बाद इन जातियों को समान नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो गया है, पर जीवकोपार्जन का कोई सम्मानजनक साधन न उपलब्ध होने से इनके पुरुष अपराध कर्म और स्त्रियाँ देह-व्यापार के लिए विवश होती हैं। भारत की पचपन वर्षों की आज़ादी ने इनकी नयी पीढ़ी को सम्मानपूर्ण जीवन जीने का कोई विकल्प नहीं दिया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपमान, विवशता और पीड़ा से लबालब उनकी ज़िन्दगी को जीवन्त पात्रों के अद्भुत कथा संसार में बदल दिया है। इसके साथ ही लेखिका ने समानान्तर 'सभ्य' समाज की ज़िन्दगी से उनके टकराव, संघर्ष और पराजय को भी अत्यंत विश्वसनीय और मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः कज्जा और कबूतरा समाज की मुठभेड़ और द्वन्द्व ही 'अल्मा कबूतरा' का केन्द्रीय विषय है, भूरी, उसके बेटे रामसिंह और उसकी बेटा अल्मा की कहानी इस टकराव की कहानी है, जिसमें सभ्य समाज से संघर्ष करने और उसका सबकुछ दाव पर लगा देने के बावजूद 'लहलुहान कबूतरा ही होते हैं'। इसका कारण यह है कि पूरी व्यवस्था ही अपनी सारी शक्ति के साथ उसके विरोध में खड़ी है। भूरी शरीर का सौदा करके भी अपने बेटे को इस योग्य बनाना चाहती है कि वह सम्मान की ज़िन्दगी जी सके। पर ऐसा नहीं हो पाता है। वह 'कबूतरा' बनकर ही जीने को अभिशप्त है। वह धीरे-धीरे अपनी संघर्ष क्षमता खोकर पुलिस का दलाल बन जाता है और अन्ततः डाकू बेदाराम के नाम पर पुलिस द्वारा प्रायोजित मुठभेड़ में मार डाला जाता है।" सन् 1978 में अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल' प्रकाशित हुआ। इसमें भंगी के दुखद जीवन का चित्रण किया गया है। गिरिराज किशोर के दलित संवेदना से संबंधित दो महत्त्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए। सन् 1982 में यथा प्रस्तावित तथा सन् 1984 में परिशिष्ट का प्रकाशन हुआ। दोनों में समाज के सभ्य वर्ग के द्वारा दलित वर्ग के लोगों की उपेक्षा तथा उनके प्रति क्रूर एवं अमानवीय व्यवहार का चित्रण बड़ी ही सुगमता से किया गया है। इस प्रकार उपन्यास, कहानी, काव्य हर क्षेत्र में दलितों के प्रति लेखकों की सहानुभूति दिखायी देती है, साहित्य में दलितों का जीवन सुधारने का भरपूर प्रयास किया गया है, क्रूरता तथा अमानवीय व्यवहार को दिखाकर उसे दूर करने की कोशिश की

गयी है। देखा जाए तो हिन्दी नाटक साहित्य में हिन्दी साहित्य की अन्य विधा की तुलना में दलित चेतना पर कम लिखा गया है।<sup>1</sup> लेकिन पिछले बीस-तीस सालों से हिन्दी नाटकों में दलित चेतना पर भी लिखा जा रहा है। दलित एवं गैर दलित नाट्य लेखकों ने दलित चेतना पर नाटक लिखे हैं। गौतम बुद्ध, स्वामी विवेकानंद, संत कबीर, संत रैदास, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, महात्मा गाँधी, डॉ. राममनोहर लोहिया, श्री जयप्रकाश नारायण, सावित्री बाई फुले, महात्मा ज्योतिबा फुले, नरसिंह मेहता एवं समाज सुधारकों के विचार एवं प्रेरक प्रसंगों पर आधारित और दलितों की समस्याओं पर आधारित हिन्दी में नाटक लिखे गये हैं। समग्र भारत में विविध प्रांतों में मंचन भी हो चुके हैं और हो रहे हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण नाटकों के प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद भी हुये है। हिन्दी नाट्यकला के नाट्य रंगशिल्प को ध्यान में रखकर दलित चेतना के नाटक लिखे हैं यह गौरव एवं प्रशंसनीय बात है। हिन्दी नाटकों पर धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का प्रभाव भी रहा है साथ में वैश्विक प्रभाव भी दृष्टव्य है। भारतेन्दु युग से लेकर आज तक वर्णव्यवस्था से प्रभावित दलितों की दशा एवं दिशा पर चित्रण किया गया है। विशेषतः स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी नाटकों में दलितों की विविध समस्याओं को ध्यान में रखकर समाधान बताते हुये नाटक लिखे गये है। सुदर्शन, सेठ गोविन्ददास, उदय शंकर भट्ट, बद्रीनाथ भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. शंकर शेष, डॉ. कुसुम कुमार, विभुकुमार, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, आनन्द प्रकाश जैन, डॉ. चन्द्र एम. आर. सागर, ओमप्रकाश, नैमिशराय एवं कर्मशील भारती आदि ने दलित चेतना पर लिखे हैं। इन सभी नाटककारों ने दलितों के जीवन में अधिकाधिक समस्याओं को, बिन्दुओं को स्पर्श किया है। वैयक्तिक जीवन, सामाजिक जीवन में दलित समाज अकल्पनीय विविध समस्याओं से, कष्टों से टकराता रहा है, संघर्ष करता रहा है आज मानवता, बंधुता हरिजनोद्धार को लेकर चिंतन, मनन, विमर्श होता रहता है, साथ में दलितों के जीवन को सुखमय बनाने हेतु सरकार तो प्रयत्नशील है, स्व. इंदिरा गाँधी ने भी दलितों के विकास हेतु अनेक विध योजनाएँ बनाई थी, शिक्षा द्वारा दलितों का विकास भी हुआ है। इस पर महाराष्ट्र, गुजरात जैसे राज्यों में स्थानीय तौर पर नाटक मंचित हुये हैं। दलितों की सबसे बड़ी समस्या अस्पृश्यता की थी, सवर्ण लोग अपने घर में, मंदिरों में, सभाओं में, दलितों को अपमानित करके वंचित रखते थे। आज उसमें परिवर्तन अवश्य दिखाई पड़ता है।

हिन्दी नाटकों में दलितों की मानसिक व्यथा को, शारीरिक व्यथा को, शोषण को, अपमान को, पीड़ा को चित्रित किया



गया है। इन नाटकों में व्यक्त होने वाली दलितों की वेदना किसी एक व्यक्ति की नहीं, समग्र भारतीय समाज की वेदना हैं ग्रामीण एवं नगरीय दलितों की समस्याएँ अलग-अलग हैं, फिर भी संघर्ष करता है दलित चाहे वह ग्रामीण हो या नगरीय। दलित विमर्श समकालीन हिन्दी साहित्य का, राष्ट्रीय संगोष्ठियों का बहुचर्चित विमर्श रहा है। दलित चेतना द्वारा अछूतोद्धार, समाज सेवा, मानवीय मूल्यों की प्रवृत्तियों का प्रचार-प्रसार भी विशेष महत्त्व रखता है। दलित समाज की विविध समस्याओं को प्रस्तुत करने के लिये हिन्दी नाट्य साहित्य में व्यंग्य नाटक, प्रतीक नाटक, समस्या नाटक, यथार्थवादी नाटक, प्रयोगधर्मी नाटक, लोकधर्मी नाटक, मिथकीय नाटक इत्यादि को देखा जा सकता है। हिन्दी नाट्य साहित्य में दलितों की कोमल भावनाओं को किस तरह ठेस पहुँचाई जाती है, कभी-कभी इस संघर्ष एवं कष्ट से निराश होकर कुछ दलित आत्महत्या कर लेते हैं, इसे चित्रित करके यथार्थ स्थिति को महत्त्व दिया है। नाटककारों ने अपने नाटकों में कहीं-कहीं दलित पात्रों को क्रांतिकारी, विद्रोही चित्रित करके दलित चेतना के लिये प्रेरक बताए हुये हैं। हिन्दी नाट्यकला के ख्याति प्राप्त रंगशिल्पी प्रयोगधर्मी नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल कृत 'एक सत्य', 'हरिश्चन्द्र' में सवर्णों और शूद्रों के बीच के संघर्ष पर चित्रण किया गया है। हरिजनों को गाँव के कुएँ से पानी भरने नहीं देते, मंदिरों में प्रवेश नहीं एवं अछूत मानकर अनुचित व्यवहार करते हैं, उस पर नाटककारों ने प्रकाश डाला है, कहीं-कहीं तो मिथकीय पौराणिक पात्रों का आधार लेकर दलित चेतना पर बल दिया है। दलित युवक लौका निडर होकर देवधर का सामना करता है। इस नाटक के भीतर एक नाटक है जो आधुनिक संदर्भ में व्याख्यायित करके दलितों की दशा एवं दिशा पर चित्रण हुआ है। लौका दलितों को अधिकार दिलाता है। हिम्मत, धैर्य एवं क्रान्तिकारी रूप लौका की जीत के प्रेरक मूलाधार रहे। लक्ष्मीनारायण लाल कृत नाटक 'गंगा माटी' नाटक में भी छुआछूत, संकुचित मानसिकता से भयमुक्त होकर स्वस्थ जीवन जीने की चेतना सह प्रेरणा दृष्टव्य है। दलित चेतना हेतु गंगा का विशेष योगदान रहता है। गंगा के प्रयत्नों से गाँव के शूद्रों की विजय होती है और सवर्णों में मानवीय मूल्यों के आधार पर परिवर्तन होता है। डॉ. शंकर शेष कृत नाटक 'बाढ़ का पानी' का मूल विचार यही है कि समाज में बढ़ती जा रही जातिवादी की संकीर्ण विनाशक बाढ़ पर मानवता का बाँध बाँधकर उसे सृजन की ओर मोड़ में पर्यवसिन करना है। जातिवाद से मुक्त होकर मानव कल्याण हेतु प्रयत्न करने पर बल दिया है। प्रस्तुत नाटक का नायक नवल है, वह शिक्षित चमार है। जीवन समाज एवं राष्ट्र के प्रति दायित्व को महसूस करता है। शिक्षा ने उसे साक्षर ही नहीं

किन्तु शिक्षित बनाया है। वह दलितों में जागृति लाने के लिये हमेशा कोशिश करता ही रहता है। प्रस्तुत नाटक में लक्ष्मी, चंदा, कावेरी भी नारी चेतना के प्रतीक हैं। नाटककार शंकर शेष ने गरीब दलितों की स्थिति का मार्मिक चित्रण छीतू और लक्ष्मी पात्रों द्वारा किया है। इस नाटक में नवल ऐसा लड़का है जो दलितों की समस्याओं के लिये, अधिकारों के लिये, अन्यायों के लिये लड़ता ही रहता है। चमार होने के कारण मार भी खाता है एवं अपमान का अनुभव करता है। सवर्णों द्वारा शोषण किया जाता है, अनादार होता है फिर भी जब गाँव में बाढ़ का पानी आता है तब वह मानवीय संवेदना स्नेहपूर्ण रूप से जाता है। हरिजनों के मुहल्ले में जहाँ बाढ़ का पानी नहीं आया है। वहाँ सबको आदर के साथ रखता है। नाटककार ने बदले की भावना में दुश्मनी नहीं लेकिन मानवता पर बल दिया है। सवर्णों में भी दलितों के प्रति व्यवहार में, भाव में आदि में परिवर्तन दिखाई देता है।

दलितोत्थान की चेतना हेतु लिखा गया डॉ. शेष का नाटक 'पोस्टर' भी महत्त्वपूर्ण है। इस नाटक में दलित मजदूरों की समस्याओं पर अर्थाभाव, शोषण, अत्याचार एवं अनादार, बलात्कार इत्यादि पर ध्यान केन्द्रित करते हुये अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिये एकता एवं जागृति पर विशेष बल देते हुये चेतना के लिये सराहनीय प्रयास नाटककार ने किया है। डॉ. लोहिया एवं जयप्रकाशजी ने ऊँच-नीच, जात-पात के बंधनों को 'राक्षस' माना है। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का कलंक माना है अनेक महान् संतों ने, समाज सुधारकों ने 'मानव मात्र समान' जन सेवा प्रभु सेवा पर बल देकर मानवीय मूल्यों का विकास किया है। महिला साहित्यकार, नाटककार डॉ. कुसुम कुमार कृत 'सुनो शेफाली' नाटक में शेफाली नायिका हरिजन दलित परिवार शोषित पीड़ित नारी के रूप में चित्रित की गई है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अध्यापिका बन जाती है। वह कदम कदम पर समस्याओं का सामना करती है। काफी सोच विचार के बाद वह निर्णय लेती है। इसलिये तो बकुल जैसे स्वार्थी, लोभी युवक से शादी करने से मना कर देती है। नाटककार ने दलितों में स्वाभिमान जाग्रत करने के लिये शिक्षा, आत्मविश्वास, निडरता एवं चेतना पर बल दिया है। आज जब साधन सम्पन्न हरिजन परिवार येन केन प्रकारेण सरकारी एवं गैर सरकारी योजनाओं के लाभ उठाते हैं तब शेफाली ऐसी योजनाओं की आवश्यकता से अधिक लाभ उठाने से इंकार करती है। परिश्रम करके स्वालंब पर बल देती हुई जीवनयापन करती है। शेफाली विधवा माँ की तीन पुत्रियों में सबसे बड़ी है। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ भी उत्साह एवं निष्ठा से निभाती है। नाटककार डॉ. कुसुमकुमार ने दलित नारी चेतना पर बल दिया है। डॉ. चन्द्रकृत नाटक

‘अक्षयवट’ में नागरिक एक तथा नागरिक दो दोनों ही निम्न वर्ग के पात्र हैं, इन दोनों दलित पात्रों के माध्यम से डॉ. चन्द्रजी ने नंद के अत्याचार एवं व्याभिचार से पीड़ित, मार्मिक रूप से चित्रित करके दलित चेतना में योगदान दिया है। ज्ञानदेव अग्निहोत्री द्वारा रचित नाटक ‘भाटी जारी रे’ में प्रकाश एक ऐसा दलित नवयुवक है जो समाज के विकास के लिये लड़ना आवश्यक मानता है, वह जानता है कि ‘डरा सो मरा’ जिससे अपमान होता हो, गुलाम बनाते हो इन सभी शोषित अमानवीय शक्तियों का मिलकर एकजुट होकर विरोध करना होगा। जब तक हम ऊँच-नीच, धर्म-कर्म, जाति-पाँत की दीवारों को नहीं तोड़ेगे तो उन्नति नहीं होगी। प्रकाश भोला से कहता है कि, हम सब धर्म-कर्म, ऊँच नीच, तेरा-मेरा आदि भावनाओं की दीवारों में जकड़ गए हैं। हमें इन सबको तोड़ना है, कोने-कोने में यही हो रहा है, दीवारें टूट रही हैं, लोग जाग रहे हैं। श्याम मोहन अस्थाना कृत नाटक रावण तेरे कितने रूप वैसे तो पौराणिक आधार पर लिखा गया नाटक है। इस नाटक में नया प्रयोग किया गया है, पौराणिक राम को जाति पाँत के बंधनों से दृढ़ करना पड़ता है। कॉलेज का प्राध्यापक राम सवर्ण होकर क्रांतिकारी बन दलित युवती सीता से विवाह अवश्य करता है। हिम्मत एवं निडरता से शादी के बंधनों में बँध जाता है। वर्ण व्यवस्था के संकुचित मानसिकता एवं ऊँच-नीच भेदभाव मानने वाले बुद्धिजीवी राम को कॉलेज से छुट्टी पर भेज देते हैं। नाटककार ने रोटी बेटी व्यवहार में दलितों को कितना संघर्ष करना पड़ता है, उस पर प्रकाश डाला है। वर्तमान में भी ऐसे कुछ दलित या सवर्ण हो यदि विवाह कर लेते हैं तो अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एम. आर. सागर कृत नाटक अंतिम अवरोध एवं एकांकी-संग्रह लाजवंती, दूसरा पक्ष में दलित चेतना दिखाई देती है। ओमप्रकाश बाल्मीकी कृत ‘जूठन’, मनोज कुमार कृत संवादों, अनिता कृत ‘दहाड़ उठा सिंह’ एवं सिद्धार्थ का ‘गृह त्याग’ विश्वनाथ शील बोधि कृत ‘संकल्प’ नाटक में सावित्री बाई फुले के जीवन संघर्ष का प्रभावी चित्रण किया गया है। प्रा. रतनलाल सोमगरी कृत नाटक ज्योतिबा फुले, नैमिशराय कृत ‘हेलोकामरेड’ कर्मशील भारती का नाटक ‘मंदिर प्रवेश’, एस. के. पिप्पल कृत संघ मित्रता की राह पर, मोहन सिंह निमेश का नाटक सीधा मुकाबला, आदिवासी लेखक सुनील कुमार सुमन कृत नाटक एक बार फिर, अजयकुमार लाल कृत ‘वक्त की आवाज़’, एकांकी नर संहार में दलितों की विविध समस्याओं पर चित्रण करके दलित चेतना का सराहनीय कार्य नाटककारों ने किया है। दलित समाज हमेशा समस्याओं, कष्टों, संघर्षों के साथ जूझता रहा है। अबाल वृद्ध सभी काफी प्रभावित थे, दूर दराज कुछ गाँवों में आज भी दलितों की दयनीय करुण स्थिति है।

अर्थाभाव के कारण अनेक यातनाओं के शिकार बनकर गाँव छोड़कर नगर की ओर जाते हैं। अत्याचार-अनाचार शोषण अनादर, गुलामी से प्रभावित कुछ दलित आत्महत्या कर लेते हैं हिंदी नाटककारों ने निडरता, आत्मविश्वास, स्वावलंबन, परिश्रमी, आयोजन, स्वच्छता, संघर्ष शिक्षा, एकता पर विशेष बल दिया है प्रगति पथ पर कदम आगे बढ़ाने के लिए हिंदी नाटक प्रेरक है। ज्ञान मंदिर के द्वार शिक्षा द्वारा ही खुल सकते हैं। शिक्षा ही एकमात्र श्रेष्ठतम मार्ग है कि दलित समाज सर्वांगीण परिवर्तन की ओर बढ़ा है और भविष्य में भी आगे बढ़ेगा। इन नाटककारों ने दलितों के कुरिवा, व्यसन, अंध श्रद्धा से मुक्त होने पर बल दिया है।<sup>9</sup>

निष्कर्ष यह है कि आज हिन्दी में दलित साहित्य पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सजग है एवं अपने कर्तव्यों की समझ उन्हें पूरी इमानदारी के साथ निभाने की चेष्टा कर रहा है। यह दलित साहित्य ही है जिसने सामाजिक विषमता एवं क्रूरता का बोध कराया है। उपन्यास, कहानी, काव्य हर क्षेत्र में दलितों के प्रति लेखकों की सहानुभूति दिखायी देती है, साहित्य में दलितों का जीवन सुधारने का भरपूर प्रयास किया गया है। क्रूरता तथा अमानवीय व्यवहार को दिखाकर उसे दूर करने की कोशिश की गयी है।

#### संदर्भ-

1. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, गाँधीवाद अस्पृश्यता एक अभिशाप, अशोक प्रकाशन, नागपुर, 1987, पृ. 34-35
2. आर.जी.सिंह, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, साहित्य भवन, इलाहाबाद 1999, पृ. 43
3. समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-सितम्बर 1994, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 51
4. विनोद शाही, कल के लिए- दलित और धर्म, पैसिफिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली, सितम्बर, 2006, पृ. 29
5. चन्द्रभान प्रसाद, भारतीय समाज और दलित, गौतम बुद्ध सेंटर, दिल्ली, पृ. 54
6. ओम प्रकाश बाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 36
7. जय प्रकाश कर्दम, हिन्दी दलित साहित्य की कथा-यात्रा, कथाक्रम, नई दिल्ली, अप्रैल-जून, 2004, पृ. 28
8. डॉ. तेज सिंह, आज का दलित साहित्य, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ. 59
9. डॉ. रमणिका गुप्ता, दलित चेतना, साहित्यिक और सामाजिक सरोकार, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 61

*प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा*

---

## प्रेमचन्द एवं बामा की कहानियों में दलित

डॉ. सफराम्मा तिरुनेलवेली

आधुनिक गद्य साहित्य में कथा साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है। कथा साहित्य में कहानी लोकप्रिय विधा मानी गयी है। भारत बहुभाषी देश है। यहाँ कई भाषाएँ बोली जाती हैं। कई भाषाओं का अपना अलग साहित्य है। हिन्दी के प्रसिद्ध कहानीकार प्रेमचन्द और तमिल लेखिका बामा की कहानियों में अधिकतर दलित सम्बन्धित विषय को देख सकते हैं। दोनों के कहानियों में अत्याचार सहते दलित पुरुष, नारी और बच्चे, उनकी गरीबी, दलितों के प्रति हीन भावना और छुआ-छूत भावना आदि दिखाई देती है।

‘दलित’ शब्द का अर्थ है दबाया हुआ, शोषित, कुचला हुआ, टूटा हुआ है। अंग्रेजी में इसका समानार्थ है-‘डिप्रेसड’। तमिल भाषा में दलित शब्द का अर्थ है- ‘ओडुक्कप्पट्ट’ इसका अर्थ है- ‘दबाया हुआ’ या ‘कुचला हुआ’।

प्रेमचन्द की कहानियों में दलित जनता किसी भी कारण वश से शोषित, पीड़ित, दलन या दबाया जाता है। चमार, हरिजन, भंगी आदि दलित वर्ग की हत्या भी की जाती है। दबाये हुए वर्ग के पुरुष और नारी ही नहीं उनके लड़के-लड़कियों को भी अधिकार वर्ग के अत्याचार को सहना पड़ता है। बामा की कहानियों में भी ऐसे दृश्य देखने को मिलता है। बामा आधुनिक तमिल साहित्य की एक प्रसिद्ध लेखिका है। वे तमिल में कई कहानियाँ और उपन्यास लिखा है। इनकी रचनाएँ अधिकतर दबाये गये, दलित जनता पर आधारित हैं। बामा अपनी कहानी-संग्रह ‘कुसुम्पूकारन’ में उच्चवर्ण और दलितों के अन्तर को व्यक्त करती हैं।

‘सद्गति’ कहानी में प्रेमचन्द ने दुखी नामक चमार के पात्र के द्वारा दलित जीवन की कठिनाइयों तथा उनके साथ हो रहे अन्याय को स्पष्ट रूप से बताते हैं। दुखी और उसकी पत्नी अपनी बेटी की सगाई शगुन के विचारण करना चाहते हैं। इसके लिए वह पंडित के घर जाने पर वहाँ पंडित, घर में थोड़ा काम करने के लिए कहकर उससे बहुत सारा काम करवाते हैं। काम करते वक्त अपनी भूख को मिटाने के लिए दुखी चिलम पीना चाहता है और उसके लिए थोड़ी आग पंडिताइन से माँगने

पर, “पंडिताइन चिमटे से पकड़कर आग लाई थीं। पाँच हाथ की दूरी से घूँघट की आड़ से दुखी की तरफ आग फेंकी। आग की बड़ी सी चिंगारी दुखी के सिर पर पड़ गई। जल्दी से पीछे हटकर सिर को झाटे देने लगा है।”<sup>1</sup>

तमिल में बामा के कई कहानियों में ऐसी ही दशा का वर्णन है। उच्च वर्ग दलित जनता को मनुष्य नहीं पशु तुल्य मानते हैं। ‘पणक्कारी’ में मुरुकेस अपने जमींदार के बैलों को नदी में नहलाने ले जाता है। बैल उसके हाथ से निकलकर बीच पानी में जाने लगता है तो उसके मालिक मुरुकेस को डाँटते हैं कि “जाके पानी में उतर कर बैल को तट की ओर ले आरे कुते।” (पोड तण्णिल एरंगी माट्टक करैय पात्तू पत्तिट्टू वाडा नाए)<sup>2</sup> बैल को पानी से तट की ओर ले आने की कोशिश में आखिर मुरुकेस पानी में डूबकर मर जाता है। बैल के बदले पानी में प्राण त्यागने वाले मुरुकेस के परिवार को 100 रुपए दिया जाता है। ‘अन्दकालम’ में चाय की दुकान में दलित वर्ग का बुजुर्ग मासन्नदादा को कुर्सी में बैठते देखकर वहाँ बैठा अशोकरामैया आक्रोश में आता हुआ कहता है कि “क्योरे चमार कुते, तुझे कितना मस्ती हो तो कुर्सी पर बैठेगा।” (एण्डा पर नाए, उनक्कू एम्पट्टू तिमिरना चेरल उठकारुव)<sup>3</sup> बुजुर्ग होने पर भी नीच वर्ग के होने के कारण उसे इज्जत नहीं दिया जाता बल्कि कुत्ता कहकर ही बुलाया जाता है।

दलित पर अत्याचार करने में पुरुष-नारी में भेदभाव नहीं है। नारी को भी बहुत सारा अत्याचार सहना पड़ता है। प्रेमचन्द की कहानियों में दलित नारी पर किये गये अत्याचार का वर्णन है। ‘विध्वंस’ में भुनगी विधवा, वृद्धा, संतानहीन, गोडिन भांड चलाकर अपना जीवन बिताती थी। संयोगवश सक्रांति के पूर्व भुनगी के भांड पर बहुत भीड़ थी। साथ-साथ उसे “एकादशी तथा पूर्णमासी के दिन भुनगी को जमींदार तथा पंडित जी के बेगार में दाने भुनने पड़ते थे। बात यहीं तक सीमित न थी इसके अतिरिक्त उसे पंडित जी के घर के और काम भी करने पड़ते थे। उस दिन यदि भोजन नहीं भी मिलता तो उसे भूखे पेट सोना पड़ता था।”<sup>4</sup>

जैसे प्रेमचन्द नारी अत्याचार पर प्रकाश डालते हैं वैसे ही बामा भी डालती है। बामा की 'मोलका पोडी' में केंगम्माल महाजन की पत्नी है। वह हमेशा गर्व के साथ अछूत लोगों का अपमान करती रहती है। उस गाँव के अछूत वर्ग उसके घर जाने के लिये घबराते हैं। नीच जाति की पच्चैयम्माल उसके ज़मीन में घास काटते वक्त उसकी आँखों में केंगम्माल मिर्च पाऊडर छिड़कती हुई उपेक्षित भाव से कहती है कि "आँख का अन्धा होगा तो होगा ही। (कण्णु कुरुडा पोना पोनदू दान)"<sup>5</sup> 'दावणी' में जगन्नाथ के घर में काम करने वाली लड़की चेल्लकिली अत्याचार न सहते हुई मर जाती है। उसके माँ-बाप को उसकी हत्या के बदले 100 रुपए दी जाती है। इस हत्या पर वहाँ की जनता के बीच ऐसी चर्चा होती है कि "जितनी भी पैसों की मस्ती होने पर भी ऐसा ही काम पर ले जाकर हत्या करेंगे ? (एन्नत्तान तुट्टुक् कोलूपुन्नालूम इप्पिडिया वेलैक्कुन्नु कूटटियादू कोलै सेयवांग)"<sup>6</sup>

दलित जनता में सिर्फ पुरुष नारी ही नहीं उनके बच्चों को भी दलित वर्ग में जन्म लेने के कारण कष्ट सहना पड़ता है। प्रेमचन्द की कहानियों में दलित लड़के-लड़कियों पर किये गये अत्याचार का वर्णन है। 'दूध का दाम' कहानी में भूंगी का बेटा मंगल उसके माँ के दूध के दाम पर जमींदार बाबू महेश नाथ के घर में उसका जूठन खाकर पलता है। एक दिन खेल के प्रसंग में मंगल और महेश नाथ के बेटे सुरेश के बीच लड़ाई हो जाती है। जिसपर सुरेश अपनी माँ से शिकायत करता है तो मालिकिन मंगल को बुलाकर डाँटती है- "क्यों रे मंगल अब तुझे बदमाशी सूझने लगी। मैंने तुमसे कहा था, सुरेश को कभी मत छूना, याद है कि नहीं बोल।"

"मंगल ने दबी आवाज से कहा - याद क्यों नहीं है।"

"तो फिर तूने उसे क्यों छुआ ?"

"मैंने नहीं छुआ।"

"तूने नहीं छुआ, तो वह रोता क्यों था ?"

"गिर पड़े इससे रोने लगे।"

"चोरी और सीनाजोरी। अभी यहाँ से निकल जा मुफ्त की रोटियाँ खाकर ही तूझे शरारत सूझती है।"

"मंगल चुपके से अपने सकोरे उठाए टाट का टुकड़ा बगल में दबाया धोती कन्धे पर रखी और रोता हुआ वहाँ से चल पड़ा।"<sup>7</sup>

बामा की 'विडुल्लै' में दलित लड़की आराई और लड़का सुब्रमणी दोनों एक महाजन के घर में काम करते हैं। महाजन की पत्नी उनसे बहुत सारा काम करवाती है। आखिर खाने के लिए सिर्फ शोरबा या दलिया ही देती है। आराई जितना भी काम करे, उसमें हमेशा कोई न कोई दोष ढूँढ़ निकालती और

हमेशा डाँटती रहती है। एक दिन उसे काम से छुट्टी मिली तो वहाँ का व्यक्ति ऐसा कहता है कि "आज तुझे भी रिहाई है, मज़ा ले लो। (इनैक्कू ओनक्कूम विडुल्लै जालिया इरुन्दुक्को)"<sup>8</sup> महाजन की पत्नी को जब-जब गुस्सा आता है तब सुब्रमणी को मारके अपना सारा गुस्सा शांत करती है। "अचानक सुब्रमणी को मारती है। (तिडीर- तिडीरनु सुब्रमणियल्लै पोट्टू अडिप्पाग।)"<sup>9</sup>

निम्नवर्ग के अन्तर्गत चमार, शूद्र, मजदूर, भंगी आदि आते हैं। वे आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक तौर पर उपेक्षित, अशिक्षित और दबाये जाने के कारण उनके नस-नस में हीन भावना रहती है। वे अपने आपको हीन मानने लगते हैं। प्रेमचन्द एवं बामा अपनी कहानियों में दलित मानसिक संवेदनशील भावना को अपने पात्रों द्वारा व्यक्त करते हैं। प्रेमचन्द दूध का दाम, गुल्ली डंडा, सद्गति आदि कहानियों में दलित जनता की मानसिकता को स्पष्ट रूप से चित्रित करते हैं। सद्गति कहानी में झुरिया उसे पंडितजी के घर आने को कहती है तो दुखी कहता है "ले आता हूँ लेकिन यह तो सोच, बैठेंगे किस चीज पर?"<sup>10</sup> दुखी भूखा-प्यासा काम में लगा रहता है मगर पंडित के घर से कुछ भी खाने को नहीं मिलता है। गोड दुखी से पंडिताईन से मांगने को कहता है तो दुखी कहता है की "कैसी बात करते हो चिखुरी, ब्राह्मण की रोटी हमको पचेंगी।"<sup>11</sup>

बामा की 'पणक्कारी' में दलित मुरुकेस अपने मालिक के बैल की जान बचाने के लिए अपना प्राण छोड़ देता है। उसके प्राण के बदले सिर्फ 100 रुपए उसकी पत्नी को देते हैं। मुरुकेस की पत्नी अपनी स्थिति को ध्यान में रखकर चुपचाप ले लेती है। उसकी बेटी इस बात को इतनी आसानी से अपने को हीन मानने के कारण सहकर कहती है कि "मेरे बाबा के मरने पर हमारे मालिक ने 100 रु. दिये। (एंग ऐया सेत्तदुक्कू एंग मुदलाली 100 रुपाइ कुडूथारू।)"<sup>12</sup>

'पोंगल' में गरीब किसान माडसामी संक्रान्ति के दिन अपने ज़मीन के चावल, मुरगी और केले का गुच्छा लेकर अपने मालिक से मिलने जाता है। मालिक एक तौलिया देते हैं उसे वह खुशी से ले आता है। अपने को हीन समझने के कारण वह अपने मालिक से दिया गया तौलिया को बहुत महत्त्वपूर्ण समझता है। एक बार वह तौलिया न देने पर बहुत दुखी होकर अपनी पत्नी से कहता है कि "राक्कम्मा मालिक पिछले वर्ष दिये तौलिया भी इस वर्ष नहीं दिया। (आत्ता, राक्कम्मा मुदलाली पोन वरुशम कुडुत्त तुण्डू कूड इन्दवाट्टी कुडुक्कलिये।)"<sup>13</sup>

दलित वर्ग की हीन भावना के लिए उनकी आर्थिक दयनीय स्थिति भी एक कारण है। दलित लोग अपने परिवार की गरीबी के कारण ही अधिकार वर्ग के अत्याचार को सहते रहते थे।

प्रेमचन्द और बामा की कहानियों से दलितों की दयनीय स्थिति को हम महसूस कर सकते हैं। 'सवा सेर गेहूँ' में प्रेमचन्द किसान शंकर की गरीबी हालत को कहानी के शुरुआत में व्यक्त करते हैं - "सीधा-सादा गरीब आदमी था, अपने काम से काम न किसी के लेने और न किसी के देने में, छल-प्रपंच की उसे दूत भी न लगी थी ठगे जाने की चिंता न थी, ठग विद्या ना जानता था, भोजन मिला खा लिया, न मिला चबेने से रात काट दी, चबेना भी न मिला तो पानी पी लिया और राम का नाम लेकर सो रहा।"<sup>14</sup>

बामा की 'दावणी' में इरुलप्पन को विवश होकर उसकी लड़की चेल्लकिली को मालिक जगननाथ के घर में काम करने भेजना पड़ा, लेकिन वहाँ अत्याचार की शिकार बनकर वह प्राण छोड़ देती है। गरीबी के कारण चेल्लकिली को इस दुनिया को छोड़ना पड़ता है। 'विडुतलै' में भी दलित सुब्रमणियम गरीबी के कारणे उनकी मालिकिन के अत्याचार को सहना पड़ता है।

दलित वर्ग उपेक्षित होने के साथ-साथ अशिक्षित अज्ञान होने के कारण उच्च वर्ग उनका शोषण करती है। उच्चवर्ण के लोग अपने आप को महान् समझते हैं और अछूत वर्ग को उपेक्षित भावना से अत्याचार करते हैं। प्रेमचन्द और बामा दोनों लेखकों की कहानियों में छुआछूत की भावना अधिक दिखाई देती है। प्रेमचन्द की 'मन्दिर' में जब सुखिया अपमान सहते हुए मंदिर में पूजा करने के लिए प्रवेश करती है तो पुजारी और वहाँ के भक्तजन उसका अपमान करते हैं कि "मार के भगा दो चुड़ैल को।" भ्रष्ट करने आयी है। दूसरे भक्त महाशय बोले- "अब बेचारे ठाकुरजी को भी चमारों के हाथ का भोजन खाना पड़ेगा।"<sup>15</sup>

बामा की 'अण्णाच्ची' में जयशंकर को एक दलित वर्ग भैया याने अण्णाच्ची कहने पर वह गुस्सा हो जाता है। वह उस दलित को चेतावनी देने के लिए पंचायत जमाता है। वह कहता है कि कौन भैया? किसे भैया? एक नीच चमार वर्ग का व्यक्ति क्या मुझे भैया कहता। (यारूडा अण्णाच्ची? यारुक्कुडा अण्णाच्ची

ओरु परंदायलियाडा एनिय अण्णाच्चीनू सोलरदू।)<sup>16</sup>

इस प्रकार हिन्दी कहानीकार प्रेमचन्द और तमिल कहानीकार बामा की आलोच्य कहानियों की तुलना में दलित पुरुष-नारी एवं उनके बच्चों पर किये गये अत्याचार, दलित जनता की गरीबी, उनकी हीन भावना और छूआछूत की भावना आदि को देखने पर यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि किसी भी धर्म जाति, राज्य के लोगों में दलित के प्रति आदर का भाव नहीं है। सभी उच्चवर्ण दलित का शासन करते हैं। दबाये रखना चाहते हैं। विभिन्न भाषा, परिस्थिति, संस्कृति पर जीने वाले लेखक के विचार, अनुभव, अनुभूति और अभिव्यक्ति में समानता दिखाई देती है।

#### संदर्भ-

1. प्रेमचन्द, सद्गति-मानसरोवर भाग 4, पृ. 112
2. बामा, पणक्कारी, पृ. 28
3. बामा, अन्दकालम, पृ. 104
4. प्रेमचन्द, विध्वंस-मानसरोवर भाग 8, पृ. 112
5. बामा, मोलका पोडी, पृ. 38
6. बामा, दावनी, पृ. 66
7. प्रेमचन्द, दूध का दाम- मानसरोवर भाग 8, पृ. 176
8. बामा, विडुतलै, पृ. 139
9. वही, पृ. 137
10. सद्गति - मानसरोवर भाग 4, पृ. 108
11. वही, पृ. 113
12. बामा, पणक्कारी, पृ. 32
13. बामा, पोंगल, पृ. 56
14. प्रेमचन्द, सवा सेर गेहूँ - मानसरोवर भाग 4, पृ. 55
15. प्रेमचन्द, मन्दिर - मानसरोवर भाग 5, पृ. 12
16. बामा, अण्णाच्ची, पृ. 56

# हबीब तनवीर के नाटकों के संवादों में लोकरंग और बिम्ब योजना

विनीता त्यागी

## बिम्ब

‘बिम्ब’ को अंग्रेजी में ‘इमेज’ (Image) कहा जाता है अर्थात् मूर्त कल्पना बिम्ब है। साहित्य में बिम्ब वह भाषिक और शैलिक उपकरण है जिसके द्वारा कोई रचनाकार अभिग्रहीत प्रभावों का चित्रोपम सम्प्रेषण करता है अथवा अमूर्त का मूर्तिकरण करता है। पाश्चात्य जगत के मनीषियों ने ‘बिम्ब’ को काव्य के प्रधान तत्त्व के रूप में स्थान दिया है। (‘बिम्ब’ को अंग्रेजी में ‘इमेज’ कहते हैं) पाश्चात्य विद्वानों का विश्वास है कि मनुष्य के मन में कुछ मानसिक या काल्पनिक बिम्ब उद्भूत होते हैं। किसी भी वस्तु को अपनी इन्द्रिय द्वारा अनुभव करने पर हमारे हृदय में जो प्रभाव पड़ता है और उससे जिस प्रकार की मानस अभिव्यक्ति होती है, उसे बिम्ब कहते हैं। आधुनिक विज्ञान यह स्वीकार करता है कि हमारे सूक्ष्म विचार किसी स्थूल, मनोग्राह्य ऐन्द्रिय गुणों से युक्त आधार पर उठते हैं। अमूर्त कहे जाने वाले विचारों के तल में भी स्पष्ट या अस्पष्ट, निश्चित या अनिश्चित मनस् चित्त रहता है जिसमें- रूप-रंग, रस, स्पर्श आदि गुण रहते हैं। विज्ञान में इन मनस् चित्रों का विशेष प्रयोजन और महत्त्व न होने से हम इनकी चिन्ता नहीं करते। साहित्य इससे बहुत दूर है, इससे तो साहित्यिक कलाकार की सहज प्रतिभा अर्थों में रूप-रंग, गति, गन्ध, स्पर्श, रस आदि को भरती है। जिससे न केवल ग्रहण किए जा सकें, अपितु वे अर्थ सजीव होकर अनुभूति को जाग्रत कर सकें।

‘बिम्ब’ शब्द का प्रयोग प्रायः छाया-प्रतिच्छाया तथा अनुकृति आदि के लिए किया जाता है और इसी अर्थ में ग्रहण किया जाता है, क्योंकि अपने वर्तमान स्वरूप तथा अर्थ में यह शब्द यूरोपीय-साहित्य के अनुरूप हिन्दी में भी प्रयुक्त होता है। ब्रिटैनिका विश्वकोष के अनुसार-“बिम्ब एक ऐसी चेतना स्मृति है जो विचारों की सम्पूर्णतः अथवा अंशतः प्रस्तुत करती है।”

इसी परिभाषा के आधार पर कहा जा सकता है कि बिम्ब का सम्बन्ध मानव मन की चेतन स्मृतियों से है। वैसे तो बिम्ब का सामान्य अर्थ है कि “किसी वस्तु, पदार्थ अथवा स्थिति विशेष के दर्शन अथवा दर्शनों की प्रतिक्रिया-स्वरूप

मानव मन पर उत्कीर्ण चित्त जिसमें अनेक रंगों की छटा विद्यमान रहती है।”<sup>1</sup>

बिम्ब की स्वरूपगत स्थितियों को दृष्टि पथ में रखकर उसकी निम्नलिखित सामान्य विशेषताएँ रेखांकित की जा सकती हैं-

क. बिम्ब किसी भाव अथवा विचार का स्थानापन्न है।  
ख. यह स्थानापन्न कतिपय विशिष्ट समानताओं के कारण है।

ग. मूल तथा स्थानापन्न की इन समानताओं अथवा समानधर्मिताओं का आधार मानव मन में रूप तथा आकार ग्रहण करता है।

घ. रूप तथा आकार ग्रहण करने के कारण उसका सम्बन्ध मानव की विभिन्न इन्द्रियों से है क्योंकि इन्द्रियबोध के कारण ही वह निर्मित और प्रेषित होता है।<sup>2</sup>

बिम्ब को सामान्य अर्थों में लिया जाये तो ‘प्रतिमा’, ‘छाया’, ‘रूप’ या ‘चित्र’ लिया जाता है परन्तु ये ‘प्रतिमा’, ‘चित्र’ इत्यादि केवल दृश्य का ही नहीं, इन्द्रिय-ग्राह्य समस्त विषयों का सम्यक् बोध कराते हैं। उसके माध्यम से काव्य-चेतना प्रतिपाद्य विषय से तादात्म्य स्थापित करने में सक्षम होती है। अतः काव्य में बिम्ब-बोध की चारुता में लालित्य-बोध की चारुता सन्निहित है।

प्रतिमा से हमारा तात्पर्य उस मनोमूर्ति या मानसमूर्ति से है जिसमें रंग, रूप, स्पर्श आदि सभी ऐन्द्रिय गुण रहते हैं, किन्तु उसका साक्षात्कार केवल मानस होता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बिम्ब इन्द्रिय विषयों का वह रागात्मक मानसिक पुनः सृजन है जो शब्दार्थ के माध्यम से कवि कल्पना द्वारा संभूत होता है। वह इन्द्रियों का विषय है। इन्हीं मूल धर्म के आधार पर बिम्ब के भी पाँच भेद किए गए हैं- रूप-बिम्ब, शब्द-बिम्ब, गंध-बिम्ब, रस-बिम्ब और स्पर्श-बिम्ब। बिम्ब विधान के मूल में कवि की लालित्य चेतना विद्यमान रहती है युगानुरूप बिम्ब के स्वरूप में वैशिष्ट्य आ जाता है। परम्परागत

बिम्बों को भी लेखक ने ऐसा आयाम दे दिया है कि वे अत्यन्त चित्ताकर्षक बन गए हैं। उनमें विषय के रूप, रंग एवं प्रभाव की सम्यक् अन्विति हैं।

### हबीब तनवीर के नाटकों के संवादों में लोकरंग और बिम्ब योजना-

हबीब तनवीर ने अपने सम्पूर्ण नाटक भारतीय जनमानस के लिए लिखे व मंचित किये। जिसके कारण इनके नाटकों में व्याप्त लोकरंग की अनुभूति दर्शक व श्रोता को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। इन लोकरंगानुभूति और लोकाभिव्यक्ति के पीछे अनेक तत्त्व समाहित हैं। जिनमें से एक बिम्ब योजना भी है। हबीब तनवीर के नाटकों में विभिन्न प्रकार के बिम्बों की छटा विद्यमान है। जो नायक व नायिकाओं अर्थात् विभिन्न पात्रों के मध्य हुए संवादों के माध्यम से स्पष्ट परिलक्षित होती है। जिनका विवरण निम्नवत् है-

#### दृश्य बिम्ब

‘आगरा बाज़ार’ नाटक हबीब तनवीर का सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है। जिसमें उन्होंने एक कथा के साथ-साथ उसके विभिन्न पक्षों को भी उजागर करने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होंने बिम्बों का भी सहारा लिया है। जिनके प्रयोग से सम्पूर्ण नाटक में एक नया आयाम उपस्थित हो जाता है और बिम्बों का पात्रों के संवादों के साथ मिलाकर किया गया समायोजन अपने आप में एक नया रूप उपस्थित करता है। जो नाटकों का प्राण बनकर उभरता है। अतः ‘आगरा बाज़ार’ नाटक के संवादों में अभिव्यक्त दृश्य बिम्ब का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

लड्डू वाला- धेले के छः छः, बाबूजी, धेले के छः छः।  
हमसे मंदा कोई न बेचे। धेले के छः,  
बाबू, धेले के छः छः। (एक बच्चे से)  
खाके देखो, मियाँ। तिल के लड्डू, मिसरी  
के समान मीठे, लो खाओ।

तरबूज वाला-तरबूज, ठंडा तरबूज। कलेजे की ठंडक,  
आँखों की तरी। शरबत के कंटोरे, ठंडा  
तरबूज। दिल की गरमी निकालने वाला,  
जिगर की प्यास बुझानेवाला, ठंडा तरबूज।

बरफ वाला- मलाई की बरफ को। बरफ को ! मलाई  
की बरफ को।<sup>१</sup>

प्रस्तुत उदाहरण के माध्यम से दृश्य बिम्ब को उजागर किया गया है। जिसमें बाज़ार की हलचल और प्रतिस्पर्धा का यह दृश्य मानों वास्तविक बाज़ार का आभास देता है।

इसी प्रकार ‘चरनदास चोर’ नाटक में दृश्य बिम्ब बड़े ही सहज और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जिसमें पुजारी दर्शकों और पाठकों के समक्ष आरती के माध्यम से दृश्य बिम्ब उपस्थित करता है। जो अत्यन्त ही स्वाभाविक है-

उदाहरण-भय प्रकट कृपाल दीन दयाला, कौशिल्या  
हितकारी/हर्षित महतारी मुनि मनहारी/अदभुत रूप निहारी/लोचन  
अभिरामा तन घनश्यामा/निज आयुष भुज चारी/भूषण बन  
माला/नयन वीशाला/शोभा सिन्धु खरारी/कहे दूरी करजोरी/अस्तुति  
तोरी/केहि विधि कर हूँ आनंता/माया गुण जाना/तीत अमाना  
वेद पुराण भवंता/आंश झुकाना//जय जय राम लला हो,  
जय-जय जनक लली...../जय जय राम लला हो, जय-जय  
जनक लली...../हो राम लला जय हो जय, जय जनक लली  
हो/जय-जय लखन लाल बजरंग बली/श्री राम जय राम जय  
जय राम जय जय राम/अतुलित बल धाममं स्वर्ण शैलाब  
देहम्। धनुज बल किसानम् ज्ञाना नामा गरगयम्। सकल गुण  
विधानम बानरा नाग भीषण। रघुपति वर दूतम वात जातम  
नमामि।

पुजारी- बोल सिया राम चन्द्र की।

भक्त- जय

पुजारी- ये लो बेटा प्रसाद हॉं ये ले दाई हरे कृष्ण  
गोविन्द हरे मुरारी हे नाथ नारायणनम्  
वासुदेवा येले बेटी।<sup>२</sup>

प्रस्तुत उदाहरण में मन्दिर की घण्टियों, आरती, मंत्रोच्चारण और शंख की ध्वनि के माध्यम से दृश्य-बिम्ब को लोक के माध्यम से रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया है।

#### वातावरण प्रधान बिम्ब

‘आग की गेंद’ एक बाल नाटक है। इस नाटक में हबीब ने वातावरण प्रधान बिम्बों का समायोजन करके नाटक में सजीवता को जन्म दिया है जिसके होने से कथा में एक नया रूप प्रस्तुत हो गया है जो पात्रों को रोचक और गतिमय बनाता है। बिम्ब का स्वरूप इतना विस्तृत है कि सब कुछ उसमें समा जाता है। इस वातावरण प्रधान बिम्ब के प्रयोग के माध्यम से ऐसा ही कुछ नया करने का प्रयास हबीब तनवीर ने किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है-

जीम- सूरज की रोशनी न हो तो न हम जिंदा रह सकते हैं  
न जानवर न पेड़ न फल-सूरज न हो।

पानी- हवा बिजली, तेल, कोयला कुछ भी न हो-सूरज ही से  
तो जिंदगी है।

जीम- पुराने जमाने में दुनिया के दो हिस्से थे। एक हिस्से  
में पहाड़ थे और दूसरे हिस्से में वादी।

अलिफ- वादी मैदान को कहते हैं न ?  
 बे- फिर वही उल्टी बात। मैदान को बस मैदान कहते हैं। वादीदो पहाड़ों के बीच में होती है। अच्छा तो पहाड़ी हिस्से के लोगों के पास आग थी और वादी वाले आग का नाम भी नहीं जानते थे।<sup>5</sup>

इस प्रकार प्रस्तुत उद्धरण में प्रकृति के विभिन्न अवयवों जैसे- सूरज, पानी, हवा, बिजली, फल आदि से अवगत कराकर वातावरण प्रधान बिम्ब को लोगों के समक्ष जीम, अलिफ और बे नामक पात्रों के मध्य हुए संवादों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है-

### प्रतीक बिम्ब

नाट्य साहित्य में आरंभ से ही नाटककारों ने प्रतीकों के सहारे अपने भावों, संवेदनाओं और समकालीन समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। भारतेन्दु ने 'अंधेर नगरी' में, प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने 'बकरी' में धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' में कई पात्रों का उपयोग प्रतीकों के रूप में किया है। इसी क्रम में आधुनिक समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध और चर्चित रंगकर्मी हबीब तनवीर ने भी अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों के कथानक में अपने समय के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को उठाते हुए पारंपरिक प्रतीकों को ऐतिहासिकता में ग्रहण करके उसका जीवंत और सजीव प्रयोग किया है।

साठ वर्षों की अनवरत् रंगयात्रा में हबीब तनवीर न सिर्फ रंगमंच के संदर्भ में नये प्रयोग करते रहे बल्कि उन्होंने अपने समय और समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं को भिन्न-भिन्न प्रतीकों के माध्यम से अपने नाटकों में उभारा है। प्रतीकों के ज़रिए तनवीर समाज के हर वर्ग के प्रतिनिधि पात्र को मंच पर लाकर खड़ा कर देते हैं। यही कारण है कि इनके नाटकों के कथानक से हर स्तर के दर्शकों का तादात्म्य स्थापित हो पाता है। तनवीर ने लोक में व्याप्त प्रतीकों को अपने नाटक का अभिन्न अंग बनाया है। इसका मुख्य कारण लोक प्रतीकों के संसार का विविधताओं से भरा होना रहा होगा। लोक प्रतीक के संदर्भ में ठीक ही कहा गया है कि, "लोक प्रतीकों की अपनी दुनिया है। लोक भोला और सरल होता है। यह विश्वास चालित होता है। उसकी मर्यादाएँ जटिल विधानों पर नहीं, प्रेम और विश्वास पर आधृत होता है।"<sup>6</sup>

हबीब तनवीर के नाटक 'चरनदास चोर' में प्रतीकों का प्रयोग कर बिम्ब उपस्थित करने का प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम नाटक के प्रथम दृश्य में बिना किसी प्रमाण के चरनदास को चोर समझकर पीछा करते हुए हवलदार आता है।

इस प्रसंग के ज़रिए पुलिस प्रशासन से आम आदमी के भयभीत रहने के सत्य को उद्घाटित किया गया है। इस तरह की एक दुर्घटना देश की राजधानी में घट चुकी है। लगभग दो वर्ष पूर्व दिल्ली पुलिस द्वारा एक निरपराध की हत्या बिना किसी प्रभाव के दिन-दहाड़े कर दी गई थी। इस प्रकार नाटक में हवलदार के माध्यम से पुलिस प्रशासन की लापरवाहियों को उजागर किया गया है। 'चरनदास चोर' नाटक में पुलिस प्रशासन के निकम्पान और बेवकूफी को भी बखूबी दर्शाया गया है। चरनदास के चोर होने का प्रमाण मिलने के बाद भी हवलदार चरनदास को पकड़ने में विफल रहता है। यही नहीं चरनदास हवलदार को बार-बार बेवकूफ बनाकर भागने में तो सफल होता ही है। साथ-ही-साथ वह हवलदार से दो रूप भी ठग लेता है। हवलदार नाटक में चरनदास से घूस लेने का भी प्रयास करता है। इस प्रसंग के माध्यम से भी पुलिस प्रशासन के सत्य का पर्दाफाश नाटककार द्वारा किया गया है। घूस लेने की मंशा से चरनदास को धमकाते हुए हवलदार कहता है-

हवलदार- अच्छा, एक बात बता बेटा। तूने चोरी की है तो मुझे बता दे। अभी हम लोग दो ही आदमी हैं। मैं तुझे छोड़ दूँगा।<sup>7</sup>

स्पष्ट है कि 'चरनदास चोर' नाटक में देश के पुलिस प्रशासन की गतिविधियों को हवलदार के माध्यम से बखूबी उभारा गया है। इस प्रकार लोक कथा में व्याप्त पारंपरिक प्रतीकों के माध्यम से बिम्ब उपस्थित कर आधुनिक और समकालीन समाज की विद्रूपताओं को उभारा गया है।

इसी प्रकार मंत्री और मुनीम, किसी राष्ट्रीय इकाई की शासन व्यवस्था की दो कड़ियाँ हैं। मंत्री को शासन व्यवस्था, सबसे ऊपर की कड़ी का प्रतीक माना जा सकता है, तो मुनीम को निचली इकाई का। 'चरनदास चोर' नाटक में नये मंत्री की नियुक्ति राज्य में हुई है और वह सरकारी खजाने की जाँच के लिए जा रहा है। रास्ते में उसे गुरु द्वारा संस्थाओं के उद्घाटन के लिए रोके जाने पर वह राज्य के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को भूलकर गुरु के साथ चला जाता है। आत्महीनता के भाव से ग्रस्त होने की वजह से मंत्री गुरु के साथ विभिन्न संस्थाओं और दुकानों के उद्घाटन के लिए जाता है। आज के राजनेता, मंत्री की तरह ही अपनी प्रतिबद्धता से अनभिज्ञ होते जा रहे हैं। नाटक के मुनीम बेवकूफ होने के साथ-साथ भ्रष्ट चरित्र का भी है। पहले तो मुनीम बिना सोचे समझे नये मंत्री के भेष में आये चरनदास को असली मंत्री समझकर सरकारी खजाने की चाभी दे देता है और सरकारी खजाने में डाका पड़ता है। असली मंत्री के आने पर मुनीम को अपनी गलती की जाँच करने का आदेश देता है तब मुनीम खजाने में हुई चोरी को बड़ा बनाने के लिए



पाँच मुहरें खजाने से और चुरा लेता है। प्रसंग देखिए-

मंत्री- अंदर जाके खजाना देखो। ज़रूर चोरी हुई।

मुनीम- पाँच ही मोहरें कम। अब भला पाँच मोहरों की चोरी कोई चोरी नहीं है। इससे अच्छा तो यह है कि पाँच मोहर मैं रख लेता हूँ और कह दूँगा कि दस मोहर की चोरी हुई। बस ! अब बनेगी चोरी। (चीखता है) मंत्री जी !...मंत्री जी। .....दस मोहरों की चोरी हो गई है।<sup>8</sup>

मुनीम का चरित्र भ्रष्ट सरकारी कर्मचारियों के प्रतीक के माध्यम से बिम्ब के रूप में उभरता है। ऐसे सरकारी कर्मचारी राज्य के रक्षक होते हुए भी भक्षक की भूमिका अदा कर रहे हैं।

शासक के रूप में राज्य की रानी सत्ताधारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। जनता के प्रति लापरवाह सत्ताधारियों अथवा शासकों के प्रतीक बिम्ब के रूप में नाटक में 'रानी' का चरित्र उभारा गया है। आज का शासक वर्ग भी 'रानी' की तरह ही जनता के प्रति लापरवाह होने के साथ-साथ भ्रष्ट और झूठा है। आज भ्रष्टाचार और झूठ के सहारे शासकों द्वारा देश अथवा राज्य की दुर्दशा हो रही है। 'चरनदास चोर' नाटक में रानी (शासक वर्ग) के आदेश पर सतनामी चरनदास (सत्य का प्रतीक) की हत्या कर दी जाती है। जब एक चोर सत्य की राह पर चलते हुए अपनी तमाम चालाकियों के बावजूद सत्ता के हाथों मारा जाता है तब लोक में बसने वाले आम आदमी का सत्ताधारियों के हाथों से बचना कितना कठिन होगा ? रानी झूठ का सहारा लेते हुए चरनदास को जान से मार देने का आदेश देती है। नाटक में पहले तो रानी चरनदास को उसके सत्यकर्म निभाने के उपक्रम से प्रभावित होकर सम्मानित करने की बात कहती है। प्रसंग देखिए-

रानी- मैंने कहा था चरनदास को हम उसकी सच्चाई के लिए सम्मान देंगे....।<sup>9</sup>

बाद में चरनदास को उसके सत्य कर्म के प्रण को निभाते रहने के कारण ही रानी उसकी हत्या करवा देती है। रानी चरनदास से कहती है।

रानी - (सक्रोध) सच बोलने का प्रण दिया है।। .... सच बोलने का प्रण दिया है। ....जिंदा रहोगे तभी तो बोलोगे।<sup>10</sup>

नाटक के अंत में रानी झूठ का सहारा लेते हुए चरनदास पर झूठा आरोप लगाती है और अपने सिपाहियों के हाथों उसकी हत्या करवा देती है-

रानी- (चीखकर) द्वारपाल। (सब लोग आ जाते

हैं और उनके साथ सिपाही हैं) इस चोर को किसने छोड़ा? कैसे आ गया मेरे कमरे के अंदर?..... इसकी ये हिम्मत। चरनदास मुझे कह रहा था- मेरे साथ ब्याह रचायेगा।

चरनदास- (आश्चर्य से अवाक्) रानी साहब।

रानी- एक चोर का यह हौसला।

चरनदास- रानी साहब।

रानी- आँखें फाड़े क्या देख रहे हो? ऐसे आदमी को मार-काटकर फेंक दो।<sup>11</sup>

इस तरह हबीब तनवीर ने नाटक में आधुनिक और समकालीन समाज के भ्रष्ट, झूठे और लापरवाह शासकों के प्रतीक रूप में बिम्ब के माध्यम से भारतीय जनमानस के समक्ष रानी के चरित्र को उभारा है। आज के सत्ताधारियों का चरित्र 'रानी' के चरित्र की तरह ही भ्रष्ट है। इन प्रतीकों का चित्रण नाटक में व्यंग्यात्मकता को माध्यम बनाकर किया गया है। इस तरह के और भी प्रतीकों को नाटक में हवलदार, गुरु, मालगुज़ार आदि पात्रों के ज़रिए दर्शाया गया है। ये प्रतीक समकालीन समाज के विभिन्न मानवीय चरित्रों पर इतने फिट बैठते हैं कि किसी भी वर्ग का सामाजिक अथवा प्रेक्षक के समक्ष एक बिम्ब उपस्थित हो जाता है।

### श्रव्य बिम्ब

'दूध का गिलास' नाटक में श्रव्य बिम्ब को शीरी दूध की महत्ता बताते हुए बिट्टू के समक्ष एक कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करती हुई करती है-

शीरीं- एक मरतबा मैं चीन गई।

बिट्टू- चीन हाय अल्लाह! अकेली ?

शीरीं- नहीं अपनी बहनों के साथ। मंगोलिया के सेहराँ में से हमारा गुजरना हुआ। टट्टुओं के ऊपर क्या देखती हूँ लोगों ने दूध का सफोफ बनाकर उस सफोफ की एक बड़ी सी ईंट बना ली है।

बिट्टू- वह कैसे ?

शीरीं- न जाने कैसे।

बिट्टू- किसी को फेंक कर मार दें तो उसका सिर फूट जाए। है न ?

शीरीं- और क्या ?

बिट्टू- और वैसे दूध फेंकेंगे तो कुछ भी न होगा।

शीरीं- आदमी भीग जाएगा बस।

बिट्टू- हाँ भीग जाएगा।

शीरीं- फिर मैंने क्या देखा कि एक आदमी ने उस ईंट में से एक छोटा-सा टुकड़ा तोड़कर पानी में डाल दिया और पानी की बोटल को टट्टू की जीन से बाँध दिया।

बिट्टू-  
शीरीं-

क्यूँ ?  
बस बाँध दिया। बोटल जीन से बाँधी रही। जब हम लोग कई मील चल चुके तो खुल गई। बोटल उड़ेली तो उसमें से सफेद-सफेद गाढ़ा-गाढ़ा दूध निकला। बिल्कुल वही जो शाम को अम्मी तुम्हें देती हैं। और तुम हाथ भी नहीं लगातीं।<sup>12</sup>

प्रस्तुत (बिम्ब) उद्धरण में श्रव्य बिम्ब को समझा जा सकता है। जिसे शीरीं और बिट्टू के मध्य हुए संवादों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। जिसमें शीरीं बिट्टू को दूध की महत्ता समझाते हुए दूध की कहानी सुनाती है। जिसे सुनकर दर्शक श्रोता और बच्चों के समक्ष एक बिम्ब उपस्थित हो जाता है। जिससे वे उससे तदाकार हो जाते हैं।

### स्वाद बिम्ब

‘दूध का गिलास’ नाटक में स्वाद बिम्ब देखने को मिलता है। जो एक संवाद के माध्यम से स्पष्ट होता है-

बिट्टू-  
शीरीं-

मुझे दूध जहर लगता है।  
अच्छा ठहरो (बाहर से मिठाइयाँ लेकर आती है) लो खाओ खा लो। खाकर तो देखो बड़ी अच्छी मिठाई है।

बिट्टू-  
शीरीं-

यह मिठाई आपने बनाई है।  
पसंद आई ?

बिट्टू-  
शीरीं-

बहुत अच्छी बहुत ही अच्छी।  
अच्छी कैसे न होगी दूध की बनी हुई है।  
हाय अल्लाह (मुँह खुला का खुला) हाथ की मिठाई हाथ ही में रह जाती है।

शीरीं-

जहर तो खा लिया अब उसे भी जहरमार कर लो।

बिट्टू-  
शीरीं-

यह दूध की बनी हुई है।  
कह तो दिया।

बिट्टू-

सच बताइए न ये क्या है, बताइए न?  
आयँ सचमुच दूध की है बताइए ना ?  
मैं और कुछ नहीं बताऊँगी। तुम बताओ

शीरीं-

अच्छी है या बुरी।

बिट्टू-  
शीरीं-

अच्छी तो है।  
बस तो फिर खाओ।<sup>13</sup>

इस प्रकार हबीब तनवीर ने स्वाद बिम्ब को शीरीं और बिट्टू के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है कि वह किस तरह दूध से बनी हुई मिठाई स्वाद ले-लेकर खाती है। वह दूध जो उसे जहर लगता था। यहाँ मिठाई के स्वाद के प्रति बिट्टू की अवधारणा को बिम्ब के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हबीब तनवीर ने अपने सम्पूर्ण नाटक भारतीय जनमानस के लिए लिखे व मंचित किये। जिसके कारण इनके नाटकों में व्याप्त लोकरंग की अनुभूति दर्शक व श्रोता को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करने के लिए पर्याप्त है। इस लोकरंगानुभूति और लोकाभिव्यक्ति के पीछे अनेक तत्त्व समाहित हैं। जिनमें से एक बिम्ब योजना भी है। हबीब तनवीर ने अपने नाटकों में बिम्बों का प्रयोग किया, वे हैं- दृश्य-बिम्ब, वातावरण प्रधान बिम्ब, प्रतीक बिम्ब, श्रव्य-बिम्ब, स्वाद बिम्ब आदि। अपने नाटकों में इन्होंने बिम्बों का समायोजन करके नाटक में सजीवता को जन्म दिया है। जिसके होने से कथा में एक नया रूप प्रस्तुत हो गया है जो संवादों को रोचक और गतिमय बनाता है।

### संदर्भ-

1. कुन्दरा डॉ. बलवीर, साहित्यालोचना, पृ. 75
2. प्रो. मदनमोहन, नाटककार मोहन राकेश : संवाद शिल्प, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1990, पृ. 106
3. तनवीर हबीब, आगरा बाज़ार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 10-11
4. तनवीर हबीब, चरनदास चोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 31
5. तनवीर हबीब, पचरंगी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 71
6. तिवारी रामचन्द्र, लोक, सं. पीयूष दर्दिया, लोक के प्रतीक और उनका परिदृश्य, पृ. 385
7. तनवीर हबीब, चरनदास चोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 31
8. वही, पृ. 62-63
9. वही, पृ. 72
10. वही, पृ. 78
11. वही, पृ. 78
12. तनवीर हबीब, पचरंगी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2004, पृ. 71
13. वही, पृ. 73

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, कला संकाय, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट (डीम्ड यूनि.) दयालबाग, आगरा

# नरेश मेहता की काव्य दृष्टि (खण्ड काव्य के संदर्भ में)

डॉ. मंजरी गुप्ता

नरेश मेहता जी ने अपने खण्ड काव्यों के माध्यम से केवल शिल्प क्षेत्र में ही नये प्रयोग नहीं किये हैं बल्कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान और मानवतावादी मूल्यों की पुनः स्थापना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस महान् कार्य के लिए उन्होंने वैदिक साहित्य, रामायण एवं महाभारत से अपने इन काव्यों के कथ्यों का चुनाव किया है। मेहता जी ने अब तक पाँच खण्ड काव्य रचे हैं-1. संशय की एक रात, 2. महा-प्रस्थान, 3. प्रवाद-पर्व, 4. शबरी एवं 5. प्रार्थना-पुरुष।

प्रारंभ के चार खण्ड काव्यों के कथानक प्राचीन कथाओं से संबंधित हैं। इनमें कवि ने तत्कालीन समस्याओं को आधुनिक संदर्भ में देखने और परखने का प्रयास किया है। पाँचवीं कृति 'प्रार्थना-पुरुष' में आधुनिक भारत के पिता, मनीषी महात्मा गाँधी की जीवन-गाथा का संक्षिप्त वर्णन है।

## 1. संशय की एक रात

इस काव्य में कवि ने पौराणिक आख्यान के माध्यम से व्यष्टि और समष्टि तथा युद्ध की समस्या पर विचार किया है। इसमें राम के घटनाहीन प्रसंग को प्रस्तुत किया गया है। सेतु-बंध के पूर्ण हो जाने पर सीता जी की मुक्ति के लिए लंका पर अभियान होने के समय 'युद्ध हो या न हो' के संशय से ग्रस्त राम के माध्यम से युगीन प्रश्नों पर विचार करना कवि का अभिप्राय है। राम अपनी व्यक्तिगत समस्या पर सीता की मुक्ति को लेकर गहरे द्वन्द्व से ग्रसित हैं। राम की मनःस्थिति, दुविधा, उद्विग्नता, अनिश्चय, विवशता, असहायता इत्यादि को ध्यान में रखकर कवि ने आज के मानव की मनःस्थिति को चित्रित किया है। संकल्पित विनयी राम द्वारा समाज के निर्णय को स्वीकार करने की विवशता आज के मानव की विवशता को उद्भाषित करती है कि समर्थ रहते हुए भी उसे सामाजिक निर्णय के समक्ष समर्पण करना पड़ता है। राम के खण्डित, विभाजित तथा अधूरे मन के स्वीकृत सामूहिक निर्णय को कवि ने व्यष्टि-मानस को समष्टि-मानस से जोड़कर प्रजातांत्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठापित किया है। राम का आंतरिक द्वन्द्व, तनाव,

असमंजस इत्यादि आधुनिक मानव के विघटित व्यक्तित्व तथा मूल्यों की टकराहट का स्पष्ट रूपांकन है। कवि मेहता ने इस प्रख्यात पौराणिक प्रसंग को एक नया अर्थ प्रदान किया है। साथ ही मनोवैज्ञानिकता और आधुनिक-बोधवत्ता से स्पर्शित होकर वह प्रसंग महत्त्वपूर्ण बन गया है। आधुनिक संदर्भों से जोड़कर कवि ने इसे आधुनिक कविता की उपलब्धि पूर्ण गरिमा प्रदान की है।

यह खण्ड काव्य समस्याओं की शृंखला है। इसमें कवि ने जो मूल समस्याएँ उठाई हैं वे इस प्रकार हैं-1. व्यक्ति का नितान्त वैयक्तिक व्यक्तित्व भी सार्वजनिक हो सकता है। (पूरा प्रबंध इसी केंद्र पर आधारित है), 2. राम के विराटत्व के साथ लक्ष्मण के लघुत्व का बोध, 3. युद्ध और शांति की समस्या, 4. एकांतिक आत्म-मंथन और सामूहिक दायित्व-बोध की समस्या एवं 5. आधुनिक युग के खण्डित व्यक्तित्व की समस्या।

प्रस्तुत खण्ड चार सर्गों में विभक्त है- प्रथम सर्ग- साँझ का विस्तार और बालू तट, द्वितीय सर्ग- वर्षा भीगे अंधकार का आगमन, तृतीय सर्ग- मध्यरात्रि की मंत्रणा और निर्णय, चतुर्थ सर्ग- संदिग्ध मन का संकल्प और संवेग है। इस खण्ड काव्य में नरेश मेहता ने पौराणिक आख्यान के मिथक के सहारे समकालीन परिवेश से आधुनिक बोध को स्पष्ट किया है। प्रथम सर्ग में राम रामेश्वरम् के सिंधु तट पर उदास मनःस्थिति में टहलते हुए सप्रश्न है। वे सोचते हैं कि मैं कितनी संध्याएँ इस तट पर बिताकर बालू से जानकी की मूर्ति बनाता रहा और वह मूर्ति प्रति संध्या ज्वार जल में समर्पित होती रही। उन्हें विश्वास था कि रावण के साथ शायद कोई संधि-शांति कारगर हो पाए, लेकिन यह मात्र उनकी कल्पना रही। राम चिंतित हैं कि उनके स्वजन संबंधी एवं स्वयं सीता क्या सोचती होगी?

राम, लक्ष्मण को हमेशा युद्ध से बचकर मानव के भीतर के श्रेष्ठ को जगाने में प्रयत्नशील प्रजा-पुरुष के रूप में आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि वह यह नहीं चाहते कि सभी जन एक व्यक्ति के लिए प्रायश्चित्त करें और एक व्यक्ति का वनवास सबके लिए अभिशाप बने। लक्ष्मण राम की अवसादग्रस्त

मनोदशा को तोड़ने का भरसक प्रयत्न करते हैं। वे अपनी व्यक्तिगत समस्या हेतु युद्ध नहीं करना चाहते क्योंकि उसमें अंशुख लोग मौत के घाट उतरेंगे। उनका मानस युद्ध और शांति के मध्य दोलाय-मान है, युद्ध के कारण संशय ग्रस्त हैं।

दूसरे सर्ग में श्री राम सेतु बंध के एक बुर्ज पर खड़े विचार-मग्न मुद्रा में उपस्थित होते हैं। उनके सम्मुख सत्य एवं युद्ध का संशय उपस्थित होता है। इस सर्ग में मेहता जी ने दशरथ और जटायु की आत्माओं को छाया के रूप में चित्रित किया है। राम चिंता-मग्न हैं। ऐसी दशा में नील प्रवेश करते हुए सूचना देते हैं कि पुल के मीनार के पीछे एक छाया अस्पष्ट घूमती दिखाई पड़ती है, पता नहीं वह किसकी छाया है? राम पुल के हिस्से के पास जाते हैं तो उन्हें वह छाया दिखाई देती है। उस छाया की गोद में एक पक्षी भी फड़फड़ाता दिखाई देता है। वह छाया राम से अकेले में बातें करना चाहती है। वह छाया राम को बड़े प्रेम से बताती है कि वह उसके दिवंगत पिता दशरथ की आत्मा है और वह पक्षी जटायु है। दशरथ की छाया पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म को मात्र महा-प्रक्रिया की संज्ञा देती हुई राम को संशय से उबारने का प्रयत्न करती है। दशरथ और जटायु की आत्माओं के माध्यम से कवि ने राम को असत्य से जूझने के लिए युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध करते हुए लड़ना ही धर्म है, का उपदेश दिलवाया है।

तीसरे सर्ग में कवि ने युद्ध-परिषद की बैठक का दृश्य प्रस्तुत किया है। जिसमें लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, जामवंत और सभी सामंत उपस्थित हैं और राम सभी से युद्ध-मंत्रणा करते हैं। लक्ष्मण हनुमान से कहते हैं कि सीता की समस्या को भाई राम अपनी व्यक्तिगत समस्या मानते हुये अत्यंत दुःखी है। तब हनुमान कहते हैं कि सीता-हरण उनकी व्यक्तिगत समस्या नहीं है, यदि उनकी व्यक्तिगत समस्या होती तो लाखों लोग समुद्र पर पुल क्यों बाँधते? इस सर्ग में महासेतु को मानव के विद्रोह का प्रतीक बताया गया है और अशोक वाटिका की सीता को सामान्य जन की अपहृत-स्वतंत्रता। हनुमान युद्ध के औचित्य को स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि रावण अत्याचारी है उसने सबकी स्वतंत्रता छीन ली है अतः लंका पर आक्रमण होना ही चाहिए। राम हनुमान के तर्क से सहमत होकर युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकारते हैं किंतु युद्ध के बाद स्थायी-शांति के लिए चिंतित हैं और कहते हैं कि युद्ध का निर्णय सोच-समझकर करना चाहिए।

‘संशय की रात’ के अंतिम सर्ग में कवि ने राम को अधूरे मन से युद्ध में विश्वस्त होना दर्शाया है। वे अपने संशयों, शंकाओं तथा प्रश्नों को दवा लेते हैं और विवश-भाव से उस निर्णय को स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि उनके प्रश्नों का

जवाब किसी के पास नहीं है और व्यक्ति इतिहास के हाथों में शस्त्र-मात्र है। इस कारण उसे इतिहास की धारा की अनिवार्यता के सामने झुकना पड़ता है। राम को यह परिताप सताता है कि भावी पीढ़ियों को यह कैसे पता चलेगा कि युद्ध का निर्णय स्वीकार करने से पहले उन्हें कितने मानसिक संघर्ष एवं संकट का सामना करना पड़ा था। पौ फटते-फटते राम युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं, यद्यपि उनकी अंतर्द्वन्द्व भावना अंत तक बनी रहती है। इस प्रकार सूर्योदय उपरांत राम की जयकार के साथ संशयात्मक संघर्ष की रात समाप्त हो जाती है-“युद्ध एक प्रतिश्रुति है, निर्णय हूँ, सबका, सबके लिए/केवल अपने ही लिए संभवतः नहीं। नहीं।।”<sup>1</sup>

## 2. महाप्रस्थान

1975 में प्रकाशित प्रस्तुत कृति में कवि ने व्यक्ति, समाज शासक-व्यवस्था आदि को लेकर वैचारिक मंथन किया है। इसमें युद्ध के बाद की वीभत्सता का भयावह चित्रण भी किया गया है। कवि की मान्यता है कि सारे मानवीय दुःखों का आधार यह राज्य, राज्य-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था का दर्शन है। धर्म का उत्स व्यक्ति की प्रज्ञा में होता है, राज्य में नहीं। राज्य का अति शक्ति संपन्न होने का अर्थ ही है व्यक्ति का स्वत्वहीन हो जाना क्योंकि किसी भी व्यवस्था का बना होना अमानवीय तंत्र का प्रबल होना है। राजनीति विषकन्या की आत्मजा है क्योंकि, सत्ताधारी कभी भी उदार चरित नहीं होता। वह षड्यंत्रों एवं कुचक्रों द्वारा अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए निर्ममतापूर्वक आचरण करता है। “सत्ताधारी पृथ्वी पर रथ की रेखा से रक्त स्नान इतिहास लिखता आया है।”<sup>2</sup> सारे अत्याचारों के पीछे राज्य-व्यवस्था का दोष, यह उसका अनिवार्य अंग है क्योंकि -“क्रूरताओं और षड्यंत्रों का प्रतीक/राज्य और राज्य/मानवीय उदात्ताओं और करुणा के प्रतीक/धर्म के प्रतिपालक नहीं हो सकते।”<sup>3</sup>

व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही किसी भी व्यक्ति का मनुष्यत्व नष्ट होने लगता है और वह सत्ताधारी अपनी व्यवस्था के बंधन द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर विचार शून्यता का एक गहरा अंधकार बना देता है। कवि ने मानवीय प्रज्ञा को विवेक रूप में प्रस्तुत कर युधिष्ठिर की मनःस्थिति का परिचय दिया है। इसका मूल कथानक महाभारत के अंतिम अंश से लिया गया है। मेहता जी का यह काव्य पाण्डवों के निर्वाण को लेकर आधुनिक बोध को वाणी देता है-“कभी उन, विचार द्वारा साधारणजनों के बारे में सोचो/जो सदा अपमानित होते रहते हैं।/जिनके स्वत्व का अपहरण ही/हमारे ये दीपित साम्राज्य है।”<sup>4</sup>

इस संदर्भ में मेहता जी ने स्वयं लिखा है- “प्रस्तुत काव्य में राज्य, राज्य-व्यवस्था और उस व्यवस्था के दर्शन की अमानवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति को स्पष्ट करना चाहा है। इसलिए मैंने कथा और कथा-पुरुषों की निर्वेद की स्थिति एवं मनःस्थिति को ही इस काव्य में चुना है क्योंकि निवेद की स्थिति में ही मानवीय प्रज्ञातमत्ता अपने विवेक रूप में होती है।”<sup>5</sup>

यह खण्ड काव्य तीन सर्गों में विभाजित- 1. यात्रा पर्व, 2. स्वाहा पर्व एवं 3. स्वर्ग पर्व। इन तीनों सर्गों का कथांश महाभारतीय पुराख्यानक होते हुए भी संदर्भ युगीन है।

इस काव्य के प्रथम सर्ग में धर्मराज युधिष्ठिर अपने अनुजों तथा द्रौपदी के साथ संसार का त्याग करके हिम प्रदेश में जाते हैं। समस्त प्रकृति हिमाच्छादित है और स्वयं हिमालय धर्म-ग्रंथ का पाठ करता हुआ मालूम हो रहा है। वहाँ का संपूर्ण प्रदेश संन्यासी के मन जैसा निर्विकार। अनासक्त मूल्यों तथा मानवीय उदात्ताओं के पूँजीभूत धर्मराज सुख-दुख, आग्रह, त्याग, नैतिकता, अनैतिकता, गौरव, अपमान आदि परस्पर भावनाओं से युद्ध करते-करते आज निर्विकार भाव से स्वर्गारोहण पथ पर अग्रसर हैं। सदा जीत और पुरुषार्थ पथ पर चलने वाले भीम विवश होकर चल रहे हैं। द्रौपदी भी बलि-पशु सी आबद्ध उनके पीछे घिसट रही है। महावीर धनुर्धर अनुज की डोरी ढीली करके चल रहा है। चलते-चलते द्रौपदी गिर पड़ती है। आधी खुली आँखों से पतियों के पद चिह्न देखती है। जीवन भर के सुख-दुख, अपने पतियों की मर्यादा आदि का स्मरण करती है। अंत में वह हिम यातना से मुक्ति के लिए पुकारती है। पार्थ। -पार्थ।

दूसरे पर्व में युधिष्ठिर द्रौपदी की पुकार सुनकर उसे समझाते हैं कि यह यात्रा की ऐसी ऊँचाई है जहाँ पर सारी सामूहिकता नष्ट होकर वैयक्तिकता में परिणत हो जाती है। जीवन के इस प्रसंग पर किसी को पुकारने से कोई लाभ नहीं, युधिष्ठिर की बातें सुनते हुए द्रौपदी जीवन की विविध प्रसंगों का स्मरण करती है, उसी समय अश्वत्थामा की जोरदार हँसी गुँज उठती है। वह द्रौपदी से भिक्षा याचना करता है लेकिन द्रौपदी कुछ भी देने में असमर्थ है। द्रौपदी हिमनद में बह जाती है। प्रिया की आर्तनाद सुनकर गांडीव को थिक्कारते अर्जुन असहाय से प्रतीत होते हैं। इसके उपरांत भीम व युधिष्ठिर का वार्तालाप होता है तो दूसरी ओर नकुल-सहदेव हिमनद में समा रहे हैं। भीम व अर्जुन विवशता एवं कायरता से आपूर्ण हैं। अर्जुन की शंका समाधान में युधिष्ठिर का विश्वास है कि दुर्ग, प्रसाद, स्मृति भवन, चारण प्रशस्तियाँ तथा झूठे इतिहास से अमरता नहीं मिलती। वह मानते हैं कि अकेला दुर्योधन ही दुष्ट नहीं था, व्यवस्था का मुकुट धारण करते ही किसी भी व्यक्ति

का मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है। इसी वार्तालाप के दौरान पाण्डवता के मेरुदण्ड अर्जुन भी समाथिलीन हो जाते हैं। इसके पश्चात् भीम जिज्ञासा वार्तालाप करते हुए हिमनद में बहते चले जाते हैं और युधिष्ठिर सर्वथा एकांकी विराट् भाषाहीनता की स्थिति में होकर भी धर्म पथ पर समर्पित होने को तत्पर आगे बढ़ते हैं।

खण्ड काव्य के अंतिम पर्व में युधिष्ठिर के सर्वथा एकांकी रह जाने के बाद भी संपूर्ण वातावरण की शांति उनके मानसिक चिंतन को अवरुद्ध नहीं कर पाती। उन्हें हिमालय यात्रा में निर्वेद हिम वक्षस्थल में सुपर्ण भोजपत्रों की स्वाहा-यात्रा दृष्ट्योचर होती है।

### 3. प्रवाद पर्व

जून 1975 में प्रकाशित यह कृति कवि की एक सशक्त कृति है। यह कवि का आख्यानक काव्य है। इसका आकार-स्रोत तुलसीदास कृत रामचरित मानस (रामायण) के लव-कुश काण्ड की एक प्राचीन कथा है। इस काव्य में कवि ने राज पुरुष, राज्य और सामान्यजन के निकट संबंधों को स्पष्ट किया है। राम के माध्यम से कवि ने बताया है कि शासक को लोगों के अधिकार छीनकर रावण की तरह तानाशाह नहीं बन जाना चाहिए। सभी को विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए। न्याय-अन्याय का निर्णय करते समय एक पक्षीय विचार करना अनुचित है क्योंकि कानून सबसे बड़ा होता है। व्यक्ति या संबंध नहीं। राजसी गरिमा और चरित्र मर्यादा को चुनौती देती साधारण सी उठी एक तर्जनी से भी इतिहास और राजतंत्र कोलाहल से भर जाते हैं।

इतिहास का निर्माण अन्याय की नींव पर शस्त्रों के बल से नहीं बल्कि मानवीय उदात्तता द्वारा किया जाना चाहिए क्योंकि राज्य भय से नहीं चला करता। किसी के भाग्य का फैसला निर्वेद की भूमि पर ही खड़े होकर किया जा सकता है। प्रस्तुत काव्य रामायणीय संदर्भ के आधार पर अपने युग-बोध को प्रज्ञा-प्रतीक राम के माध्यम से मानवीय परिप्रेक्ष्य में समाहित करने का सफल प्रयास है। अपनी समस्त पौराणिकता के बावजूद बोध से युक्त है। कवि अपने उद्देश्य लोक बनाम राजतंत्र की समस्या को आमने-सामने रखने एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना में पूर्णतः सफल हुआ है। सीता के चरित्र की ओर एक अनाम धोबी की उठी शंका-तर्जनी के फलस्वरूप उत्पन्न शासन की प्रतिक्रिया को कवि मेहता जी ने इस काव्य का माध्यम बनाया है।

पाँच सर्गों में विभक्त इस कृति में कवि ने आधुनिक संदर्भ में अपने विचारों की अभिव्यक्ति दी है। ये पाँच सर्ग हैं-

1. इतिहास और प्रति इतिहास, 2. प्रति इतिहास और तंत्र, 3. शक्ति : एक संबंध, एक साक्षात्, 4. प्रति इतिहास और निर्णय एवं 5. निर्वेद-विदा।

इस कृति के प्रथम सर्ग में राम को अद्धिग्न एवं प्रश्नाकूल दर्शाया गया है। एक साधारण जन द्वारा राजसी-गरिमा और सीता की चरित्र-मर्यादा पर उठी तर्जनी राजतंत्र और इतिहास में कोहराम भर देती है। ऐसी अनाम तर्जनी में इतिहास को प्रति-इतिहास में बदल देने की शक्ति होती है। जब कोई अज्ञात कुल-शील इतिहास-पुरुष के विरुद्ध तर्जनी उठाने का साहस करता है तब वह मात्र विद्वेष द्वारा नहीं करता। इसलिए राम विचार करते हैं कि इस वाणी हीन प्रति इतिहास के सामने मुझे अपनी विधि-मण्डित ऐतिहासिकता की परीक्षा देनी ही चाहिए। व्यक्ति चाहे इतिहास-पुरुष हो या पुराण-पुरुष, वह मानवीय देश-काल से ऊपर नहीं होता क्योंकि इतिहास से अधिक मूल्य सत्य का होता है।

द्वितीय पर्व में सभा-सदस्य राम को बताते हैं कि यह एक साधारण धोबी का हाट में दोषारोपण करना, उसका दुस्साहस है, एक अनाधिकार चेष्टा है। भरत इसे राजद्रोह कहते हैं। वे मानते हैं कि धोबी का कर्तव्य था कि वह सार्वजनिक रूप से इतने बड़े दोषारोपण से पहले कुछ सोचता। राम इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि जब एक साधारण व्यक्ति हमारी राज्य-गरिमा और चरित्र-मर्यादा की ओर उँगली उठाता है, तब मैं, मेरा राज्य और राज्य-शक्ति के यह सारे आधार-स्तंभ साधारणता को इतिहासहीन कर देने का संकल्प करते हैं। तब मुझमें और रावण में क्या अंतर रह जाता है? भाग्य का फैसला निर्वेद की भूमि पर खड़े होकर किया जा सकता है।

तीसरे पर्व में आधी रात के समय राम अपने शयन कक्ष में बड़े दुःखी एवं उदास हैं। ऐसे समय में सीता राम से कहती है कि क्या सबका अपना-अपना भाग्य नहीं होता? राम कहते हैं कि 14 वर्ष का वनवास हमने नहीं भोगा? राम का मानना है कि शक्ति का उत्तर तो प्रति शक्ति से दिया जा सकता है किंतु साधारणता का क्या उत्तर हो सकता है? सीता आसन्न-प्रसव के इस संकट में भी राज्य की गरिमा और चरित्र-मर्यादा की रक्षा हेतु कोई भी परीक्षा देने के लिए तैयार हैं।

चतुर्थ पर्व में राज्य-सभा में लक्ष्मण बताते हैं कि धोबी ने सार्वजनिक रूप से महादेवी सीता के परीक्षित निर्दोष चरित्र पर अविवेक पूर्ण शंका जताई है। इस शंका-तर्जनी ने चारित्रिक, नैतिक तथा मूल्यगत संस्कारों तथा मान्यताओं पर विद्वेषपूर्ण एवं ऐतिहासिक प्रश्नचिह्न लगा दिया है। जिसकी उपेक्षा या अवमानना करना राष्ट्रीय तथा सामान्य जन-जीवन की दृष्टि से ऐतिहासिक अपराध होगा। राम का मानना है कि शंका का

उत्तर केवल निर्भयता ही हो सकती है और व्यक्ति पद, मर्यादा और अधिकार सब कुछ त्याग कर ही निर्भय हो सकता है और सीता उसका उत्तर अपने त्याग द्वारा दे सकती है। अतः कल सूर्योदय के साथ ही सीता वनवास के लिए प्रस्थान करेंगी। वनवास काल में वे किसी भी राजकीय सुविधा और सुरक्षा की अधिकारिणी नहीं होंगी। सीमांत तक लक्ष्मण रथ में छोड़कर आएंगे। राम का यह उत्तर सुनकर सब अवाक् से रह जाते हैं।

अंतिम पर्व में सूर्योदय के समय सीता को लेकर लक्ष्मण रथ पर चले जा रहे हैं। राम दूर जाते हुए रथ को खिन्न और उदास मन से देखते हुए विचार करते हैं कि यह कैसा दृश्य है कि अपने ही आदेश पर अपना ही भाई अपनी ही परम पवित्र तथा माँगलिक पत्नी सीता को सीमान्त पर काम-ग्रास-सा रख आएगा, वह भी इस आसन्न-प्रसवा स्थिति में। सीता की यह परीक्षा उस घड़ी का निर्णय है जब व्यक्ति अपनी इतिहास-पुरुषता की रक्षा के लिए निर्मम और असंग कर्म करता जाता है—“आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में, प्रिया को/किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया राम?/ऐसा अमानुषी आचरण तो, कोई बंधक भी/आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता/इतिहास की कितनी बड़ी आश्वस्त।”<sup>6</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि मेहता जी ने इस कृति में मानवीय परिप्रेक्ष्य में समकालीन जीवन के ज्वलंत प्रश्नों को सही दिशा देने का सुंदर प्रयत्न किया है। “यह खण्ड काव्य रामायण की घटना के पौराणिक पट पर वर्तमान कालीन अपात-स्थिति की घटना का मुखर चित्र है।”<sup>7</sup>

#### 4. शबरी

यह खण्ड काव्य पौराणिक कथा पर आधारित है। इसके कथानक का मूल-स्रोत ‘बाल्मीकी-रामायण का अरण्यकाण्ड’ है। यह 1977 में प्रकाशित हुआ। नरेश का चतुर्थ खण्ड काव्य है। इस काव्य में कवि ने वैचारिक ऊर्ध्वता और आत्मिक विकास के माध्यम से जन्मगत निम्न वर्गीयता को ऊर्ध्वता प्रदान की है। उनका मानना है कि “चेतना के ऊँचे स्तर पर पहुँचकर व्यक्ति कर्म-दृष्टि के द्वारा सम्माननीय, पूजनीय बन सकता है। साम्प्रदायिकता और वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर आज हमें मानवीय दृष्टि की आवश्यकता है।”<sup>8</sup>

‘शबरी’ एक मानवीय कथा के रूप में यहाँ वर्णित है। शबरी निम्नवर्गीय होकर भी किस प्रकार संघर्ष करती हुई आत्मोत्थान कर सकी, यही इस कथा का मूल बिंदु है। कवि ने इसकी कथा को पाँच सर्गों में विभक्त किया है- 1. त्रेता, 2. पम्पासर, 3. तपस्या, 4. परीक्षा तथा 5. दर्शन सर्ग।

प्रथम सर्ग में ग्राम सभ्यता के समाज का चित्रण किया

है। लोगों ने जंगलों को साफ कर खेती-बाड़ी करनी शुरू कर दी। अधिकांश नगर नदियों के किनारे बसे और वहीं पर सबसे पहले सभ्यता विकसित हुई। उस समय चार वर्ण थे। इसके अतिरिक्त समाज में कुछ ऐसे लोग भी थे जिनको धर्म और नैतिकता में कोई विश्वास नहीं था। उस समय जंगलों में रहने वाली जंगली-जातियाँ जानवरों का शिकार करके जीवन-यापन करती थीं। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था, हिंसा और लूटपाट करना। शबरी उन्हीं वन-जातियों का एक अंग थी। शबरी को मजबूर होकर घृणित जीवन जीना पड़ रहा था। हिंसा, गंदे और भयानक वातावरण में उसका मन ऊब चुका था। उसके मन में आता है कि संसार के जितने बँधन हैं उन सब में प्रभु का बँधन श्रेष्ठ है। अतः उसने सदा के लिए घर त्याग देने का निश्चय कर लिया।

दूसरे सर्ग में पम्पासर स्थान की महिमा का वर्णन है। शबरी ने सुना था कि पम्पासर के पास अनेक बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के आश्रम हैं। उन सब में मतंग ऋषि सबसे अधिक तेजस्वी और प्रतिभा सम्पन्न हैं। इसलिए शबरी ने उन्हीं के आश्रम में जाकर उन्हीं के उपदेश और मार्ग-दर्शन से भगवान की भक्ति-साधना करने का निश्चय किया। पम्पासर पहुँचकर शबरी ऋषि के आश्रम में जाकर बाहर ही उनकी प्रतीक्षा करती है। ऋषि के आते ही उसने शीश झुकाया और ऋषि शबरी के शूद्र होने के कारण सामाजिक भय से इसे स्वीकार करने में थोड़ा हिचकिचाते हैं तो शबरी सामाजिक वर्ण-भेद पर प्रहार करती हुई कहती है-“क्या आत्मा की उन्नति केवल, है उच्च वर्ग तक ही सीमित/प्रभु तो है सबके पिता, भला उनकी आराधना क्यों सीमित?”<sup>9</sup>

फिर क्या था कि शबरी की इस प्रकार की भक्ति-भरी बातों से ऋषि को विश्वास हो गया कि शबरी अवश्य ही कोई भटकी हुई पुण्यात्मा है-“विश्वास हो गया ऋषि को, शबरी निश्चय पुण्यात्मा/जाने किन कर्मों के हित, थी भटक गई यह आत्मा।”<sup>10</sup>

ऋषि ने शबरी पर प्रभु की असीम कृपा समझ उसे आश्रम में रहने की अनुमति देकर गायों की सेवा का भार सौंप दिया। इसके पश्चात् ऋषि का विरोध हुआ, लांछन भी लगा लेकिन उन्होंने शबरी को नहीं छोड़ा।

तृतीय सर्ग में शबरी का तपस्वी रूप चित्रित किया गया है। मतंग ऋषि की आज्ञा से शबरी तपोवन के पास ही एक कुटिया बनाती है और निर्जन जंगल में रहने लगती है। आश्रम जीवन को आत्मसात् कर अपने सभी कार्यों में तल्लीन रहने लगी। वह सभी कार्य प्रभु की सेवा और श्रृंगार समझकर करती है। वह स्वयं तपस्या रूप हो गई है। उसे विश्वास हो गया है

कि स्वयं प्रभु ही एक दिन उसकी तपस्या से खिंचकर दर्शन देने चले आएँगे।

चतुर्थ सर्ग में शबरी के व्यक्तित्व, कर्म और भक्ति भाव की परीक्षा होती है। मतंग ऋषि के आश्रम में रहते हुए शबरी ने थोड़े ही दिनों में अत्यंत प्रशंसा एवं यश अर्जित कर लिया। ऋषि अपने प्रवचनों में बार-बार शबरी का नाम सावित्री और अनुसूया के साथ लेने लगे। किंतु यह कीर्ति ही उसकी शत्रु बन गई। आश्रमवासी अन्य ऋषि-मुनियों ने मतंग और शबरी का घोर विरोध किया, लांछन लगाया और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मतंग ऋषि को आश्रम और शबरी में से किसी एक को चुनना होगा। ऋषि ने शबरी को चुना और ऋषि ने आश्रम को त्यागकर, आश्रम कुटी बनाकर यज्ञ, कीर्तन और आराधना के साथ बड़े ही मनोयोग से शबरी को योग और दर्शनशास्त्र का ज्ञान दिया।

अंतिम सर्ग में शबरी को प्रभु के दर्शन होते हैं। उन्हीं दिनों मतंग ऋषि को खबर मिली की सीता का हरण हो गया है और राम, लक्ष्मण के साथ उन्हें वन-वन खोजते हुए पम्पासर की ओर आ रहे हैं। वे समझ गए कि यह तो एक बहाना है। एक दिन ऋषि बाहर कोलाहल सुनते हैं तो बाहर निकलकर देखते हैं कि भगवान राम आश्रम के अन्य लोगों की ओर उन्हीं की ओर आ रहे हैं। ऋषि के पास आते ही दोनों भाई ऋषि के चरणों में शीश झुकाते हैं।

बेर खाकर प्रभु ने शबरी को अपनी भक्ति का प्रसाद दिया और वह कृतार्थ हो गई और परमपद की अधिकारिणी बनी शबरी शूद्रा से शक्ति बन गई-“केवल मतंग ये अविचल, संतोष बड़ा था मन में/शूद्रा से शक्ति बनी वह, संभव है सब कुछ जीवन मे।”<sup>11</sup>

इस प्रकार स्पष्ट है कि शबरी वर्ण एवं वर्ण संघर्ष की चेतना है जो व्यक्ति से ऊपर उठकर सामाजिक चेतना का रूप धारण करती है। इस काव्य में कवि ने स्थापित किया है कि आज समाज में साम्प्रदायिकता एवं वर्ण-जाति भेद की सुदृष्टि आवश्यक है।

## 5. प्रार्थना पुरुष

1985 में प्रकाशित ‘प्रार्थना-पुरुष’ मेहता जी द्वारा रचित ‘गाँधी-गाथा’ है। इसमें कवि ने गाँधी जी के जीवन-काल की प्रमुख घटनाओं एवं कार्यों का वर्णन किया है। बालक मोहन जन्म से ही एक-एक विशेषताओं से जुड़ता जाता है। मित्र ‘उखा’ के लेकर माँ के हाथ डॉटे जाने पर उसमें समता भाव उत्पन्न होता है। श्रवण कुमार की माता-पिता सेवा, हरिश्चंद्र की सत्य-प्रियता उसे आदर्श बनने को प्रेरित करती है। युवावस्था

में विदेशी वातावरण की तड़क-भड़क उसे सादे जीवन की ओर मोड़ती है। कानून की डिग्री प्राप्त कर वह न्याय और सत्य के लिए हर कष्ट को झेलता है तथा अत्याचारों और अनाचारों के विरुद्ध लोगों को लड़ना सिखाता है। वह मानता है कि सत्य को पराजित करने के लिए केवल दंड-विधान पर्याप्त नहीं है। उसी की भाषा में उसे उत्तर देना ही आखिरी उपाय नहीं है, बल्कि क्षमा, अहिंसा तथा सत्याग्रह का मार्ग ही अधिक उपयुक्त है-“उसका संदेश है-पूर्ण अहिंसा को सत्याग्रह/से विरोध है सम्भव, यही मार्ग है जिससे/दानवता का पूर्ण पराभव, तथा घृणा नहीं विद्वेष नहीं/केवल निर्भयता मन में, महाशक्ति जागा करती जब/जन हो अनुशासन में।”<sup>12</sup>

इस प्रकार गाँधी बचपन के प्राप्त संस्कारों का निरंतर मार्जन करते हुए जहाँ व्यक्ति रूप में सिद्ध, महापुरुष और महात्मा बन गए वहीं अपने संपूर्ण जीवन को उन्होंने जनहित में लगा दिया। सत्य और अहिंसा के नए अस्त्र का उन्होंने अविष्कार किया। विदेश में रहकर रंग-भेद की समाप्ति का सफल प्रयास किया और अपने देश भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराया। वे व्यक्ति से नहीं उसके मन के विचारों से घृणा करते थे। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान थे। वे वर्ण भेद और जाति-भेद से परे थे किंतु सामान्य-जन उनकी इस उच्चता को अपनी संकुचित दृष्टि के कारण पूरी तरह समझ नहीं पाया।

प्रस्तुत खण्डकाव्य में मेहता ने महात्मा गाँधी के जीवन-काल की प्रमुख घटनाओं, स्थितियों एवं कार्यों को छः सर्गों में प्रस्तुत किया है-

1. ‘जीवन-प्रभात’ में गाँधी के जन्म एवं बचपन की कुछ घटनाओं को स्पष्ट किया गया है।
2. ‘समुद्र का आमंत्रण’ में पिता की मृत्यु के बाद उच्च शिक्षा के लिए गाँधी जी विदेश की ओर रवाना होते हैं।
3. ‘जीवन में साक्षात्’ में किसी कानूनी कार्यवाही हेतु बुलाए जाने पर दक्षिण अफ्रीका जाते हैं। वहाँ पर कालों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं और कुछ समय बाद स्वदेश लौट आते हैं।
4. ‘तपस्या की ओर’ सर्ग में स्वदेश लौटकर कलकत्ते में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में वे भाग लेते हैं। वहाँ नेताओं के अंग्रेज़ी भाषा के मोह को देखकर उन्हें काफी निराशा होती है। द. अफ्रीका के नटाल प्रदेश में पुनः बुलावा आने पर वे दक्षिण अफ्रीका प्रस्थान करते हैं वहाँ जाकर अधिकारों के लिए लड़ी जा रही लड़ाई को अहिंसा और सत्याग्रह

के आधार पर एक नई शक्ति प्रदान करते हैं। जनता उनका साथ देती है।

5. ‘स्वेदश की पुकार’ पाँचवें सर्ग में 21 वर्षों तक दक्षिण अफ्रीका की सेवा के उपरांत प्रथम विश्व-युद्ध के समय गाँधी जी का स्वदेश आगमन होता है। यहाँ विदेशी सत्ता के क्रूर शासन से परेशान भारतवासियों में आज़ादी के संघर्ष का बीज बोते हैं। गाँधी जी के नेतृत्व में आज़ादी का आंदोलन प्रचण्ड रूप धारण करता है। अनेक बार जेल जाना पड़ता है। जनता को विदेशी शासन की क्रूरता का शिकार होना पड़ता है। किंतु वे विचलित नहीं होते हैं। इसके विपरीत असहयोग आंदोलन, सत्याग्रह और अहिंसा के माध्यम से सत्य की विजय होती है और भारत स्वतंत्र होता है।
6. ‘स्वाधीनता का मूल्य’ अंतिम सर्ग में स्वतंत्रता के पश्चात् देश के आंतरिक हिस्सों में उत्पन्न कलह भारत-पाकिस्तान के विभाजन के बाद भी बंद नहीं हुई। बल्कि हिंदू-मुस्लिमों के मन में द्वेष-भावना और बढ़ गई इसमें उत्पन्न दंगों के समय मुस्लिमों की रक्षा की खातिर गाँधी जी के द्वारा किए जाए उपवास के कारण एक धर्मांध हिंदू ने एक प्रार्थना सभा में शांतिमय प्रवचनों के बीच सत्य और अहिंसा के इस पुजारी ‘प्रार्थना-पुरुष’ को सदा के लिए समाप्त कर दिया।

इस प्रकार नरेश मेहता के काव्य-संसार के विवेचन से स्पष्ट है कि उनकी कृतियों में मानवता के प्रति गहन प्रेम-भाव है। उच्च भविष्य के प्रति गहन आस्था है। अतीत-गौरव में भी वर्तमान जीवन की सामाजिक एवं शाश्वत समस्याओं की खोज है एवं जीवन की वास्तविकताओं के प्रति विशेष लगाव है।

#### संदर्भ-

1. संशय की एक रात, पृ. 92-93
2. डॉ. विमला सिंह, नई कविता और नरेश मेहता, पृ. 53
3. महाप्रस्थान, पृ. 110
4. वही, पृ. 107
5. डॉ. विमला सिंह, नई कविता और नरेश मेहता, पृ. 53
6. प्रवाद पर्व, पृ. 109
7. डॉ. शिव प्रसाद गोयल, हिंदी के खण्ड काव्य, पृ. 120
8. नरेश मेहता के खण्डकाव्य एक अनुशीलन, पृ. 8
- 9-11. शबरी, पृ. 19, 24, 80
12. प्रार्थना पुरुष पृ. 31

हिन्दी विभाग, रामलाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय



## हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण यथार्थ

मोहम्मद साजिद मजीद

“साहित्य में विचारधारा की भूमिका प्रमुख होती है, परन्तु मात्र विचारों का पुलिन्दा ही साहित्य को जन्म नहीं देता। उसके लिए कलात्मक अभिव्यक्ति जीवन के विविध रूपों और अंगों की विशद जानकारी और मार्मिक संवेदना बहुत आवश्यक है।”<sup>1</sup> उपन्यास साहित्य की एक सशक्त विधा है। यह एक ऐसी कला है जो सम्पूर्ण मानव जीवन को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि कलाकृतियाँ आर्थिक प्रक्रियाओं और आवश्यकताओं का प्रतिबिम्ब मात्र हैं। उनके अस्तित्व को चेतना निर्धारित नहीं करती बल्कि उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है।<sup>2</sup>

“सामन्तवाद के हास के बाद पूँजीवादी व्यवस्था में सामन्ती मूल्यों पर आधारित अनेक उच्चकोटि के उपन्यास लिखे गये हैं। उपन्यास का आधार जीवन की सम्पूर्णता है, इसके भाव जगत् और बाह्य जगत् में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। दोनों के समन्वय में ही भरे-पूरे जीवन और यथार्थवाद का विकास सम्भव है।”<sup>3</sup>

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचन्द वह दीपक हैं जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को सर्वोच्च सामाजिकता से जोड़कर उसे एक निश्चित दिशा प्रदान करते हुए एक सुदृढ़ परम्परा का आरम्भ किया। ‘सेवासदन’ से ‘गोदान’ तक उनके कथानक ग्रामीण जीवन से सम्पृक्त हैं। किसान, जमींदार, महाजन, पटवारी, पुलिस का अमला आदि विभिन्न वर्गों के पात्र उनके उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। प्रेमचन्द ‘गोदान’ में ग्रामीण जीवन की विविधता और व्यापकता के साथ ग्रामीण जनता के शोषण को सामने लाने का प्रयास करते हैं, जो कर्मभूमि, रंगभूमि, कायाकल्प, प्रेमाश्रम आदि में दिखायी देते हैं। प्रेमचन्द के बाद लेखन में ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यासों की एक सशक्त परंपरा विकसित हुई। इसमें प्रमुख रूप से बलचनमा, गंगा मैया, मैला आँचल, वरुण के बेटे, परती: परिकथा, कब तक पुकारूँ, सती मैया का चौरा, आधा गाँव, अलग-अलग बैतरणी, रागदबारी, जल टूटता हुआ, धरती धन न अपना, कभी न छोड़ो खेत आदि

उपन्यास हैं। इनमें प्रमुख रूप से नागार्जुन का उपन्यास बलचनमा ऐसा उपन्यास है जो प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक भारतीय ग्रामीण जीवन के सामाजिक यथार्थ को चित्रित करते हुए ग्रामीण जीवन में भूमि-व्यवस्था के साथ बनते-बिगड़ते सम्बन्धों के प्रभावों को उद्घाटित करता है। उपन्यास की कथा के केन्द्र में सामन्तवादी शोषण और खेतिहर मजदूर की दयनीय अवस्था का यथार्थवादी चित्रण है। यह मर्म को छू लेता है। उपन्यास में बंधुआ मजदूर ललुआ की निमर्म पिटाई की तस्वीर प्रस्तुत की गई है जो सामन्ती नृशंस्ता, क्रूरता एवं अत्याचारों की ओर संकेत करती है। बलचनमा कहता है-“फूलबाबू के बाप इन्हीं गरीबों की जमीन-जायदाद हड़प-हड़प कर औकात वाले बने हैं।”<sup>4</sup> इसी श्रेणी में ‘रेणुकृत ‘दीर्घतपा’ और ‘जुलूस’ उपन्यासों को रखा जा सकता है।

आज़ादी के बाद के दो-तीन दशकों में शहरों के औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। धीरे-धीरे इस प्रक्रिया का प्रभाव गाँवों में भी दिखाई पड़ने लगा। बढ़ते हुए औद्योगीकरण की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ सुखद भविष्य के सपने लेकर छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर तेजी से शहर की ओर पलायन करने लगे। जिससे गाँवों में एक नये वर्ग का जन्म हुआ, भूस्वामी और पूँजीपति सम्मिश्रण युग। इस वर्ग ने सरकारी सुविधाओं तथा सहकारी संघों का भरपूर लाभ उठाते हुए व्यक्तिपरक दृष्टि का प्रसार करते हुए सामूहिक जीवन पद्धति को अस्त-व्यस्त करने लगा। इस नये उपजे ग्रामीण वातावरण का सजीव चित्रण ‘आधा गाँव’ ‘रागदरबारी’, ‘अलग-अलग बैतरणी’ आदि में मिलता है।

सातवें दशक के अन्त में जनआकांक्षाओं को स्वर देने वाली अनेक कृतियाँ सामने आईं, जिनमें जल टूटता हुआ, धरती धन न अपना, अपना मोर्चा, तमस, मेरी तेरी उसकी बात आदि ऐसी ही औपन्यासिक कृतियाँ हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं के साथ भारतीय कृषि-व्यवस्था का औद्योगीकरण आरम्भ हो गया। कृषि के आधुनिकीकरण तथा औद्योगीकरण ने ग्रामीण जीवन में भी व्यक्तिपरक दृष्टि को

उभारा तथा व्यक्तिवादी जीवन-पद्धति को जन्म दिया। हरित क्रांति ने निर्धनता और सम्पन्नता की दीवारें और ऊँची कर दीं। इस स्थिति ने वहाँ नये तनावों और शिक्षा के प्रसार सम्बन्धी व्यापक राजकीय सुविधाओं से उत्पन्न वर्ग चेतना ने नये संघर्षों को जन्म दिया। ग्रामीण जीवन और उससे सम्बद्ध इन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को भलीभाँति समझते हुए उपन्यासकारों ने इसका यथार्थ चित्रण उपन्यासों में किया है। 'गंगा मैया' में भैरवप्रसाद भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की संक्रमणकालीन स्थिति का चित्रण करते हैं, तो फणीश्वरनाथ 'रेणु', 'मैला आँचल' में गाँवों में भूमि-व्यवस्था के बदलते हुए स्वरूपों को प्रस्तुत करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। दरअसल प्रस्तुत उपन्यास जमींदारी उन्मूलन के बाद ग्रामीण जीवन की स्थिति का प्रामाणिक दस्तावेज है। गाँव के ज़मींदार के पास गाँव की 80 प्रतिशत से अधिक भूमि है जबकि बाकी लोग शोषण के शिकार हैं।

“वरुण के बेटे” उपन्यास में नागार्जुन ने सामन्तवादी व्यवस्था के अन्त और पूँजीवाद के विकास की प्रक्रिया को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए आज़ादी के बाद गाँवों के किसानों के शहरी मजदूरों में परिवर्तित हो जाने की पूरी प्रक्रिया को रेखांकित किया है। मलाही-गोड़ियारी के छोटे से ग्रामाँचल की ये समस्याएँ महान् भारत की समस्याएँ हैं जिसमें भूमि व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था और राजनीति भी शामिल है।

रेणु कृत 'परती: परिकथा' में ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में प्रारम्भ औद्योगीकरण की प्रक्रिया का चित्रण है। जितन बाबू का ट्रेक्टर इसी परिवर्तन की प्रक्रिया का प्रतीक है। 'कब तक पुकारें' में रांगेय राघव ने नटों के आर्थिक शोषण, सामाजिक पतन को रेखांकित किया है। सुखराम, नरेश, त्यागी, कजरी आदि पात्र विरोधी स्थितियों को झेलते हुए वर्ग-चेतना को स्पष्ट करते हैं।

भैरवप्रसाद गुप्त 'सती मैया का चौरा' में जमींदारों के अत्याचार तथा अत्याचार के विरुद्ध किसानों का संघर्ष, पूँजीवादी व्यवस्था का विकास और उसकी असंगतियों, सरकारी नेता और अधिकारियों द्वारा ली जाने वाली घूस, पण्डे-पुरोहितों के थोथे आडम्बर, शिक्षा-संस्थाओं में होने वाले भ्रष्टाचार, स्वार्थ-सिद्धि के लिए साम्प्रदायिक दंगे कराने वाले खादी में घुसे हुए सामन्त, पूँजीपति लोग, पदों के भूखे काँग्रेसी नेता, पूँजीवादी व्यवस्था विस्तार के परिणामस्वरूप बेरोजगारी, महँगाई आदि का समाजवादी दृष्टि से चित्रण किया है।

'आधा गाँव' ग्रामीण जीवन पर लिखा गया एक बहुचर्चित उपन्यास है। सम्भवतः हिन्दी उपन्यास में सर्वप्रथम एक छोटे गाँव में रहने वाले शिक्षा मुसलमानों की सामाजिक और

आर्थिक समस्याओं को सामने लाने का प्रयास किया गया है-“यह कहानी है उन खण्डहरों की जहाँ कभी मकान थे और यह कहानी है उन मकानों की जो खण्डहरों पर बनाये गये हैं।”<sup>5</sup> शिवप्रसाद सिंह 'अलग-अलग वैतरणी' ग्रामीण जीवन की समस्याओं, बिखराव, स्वार्थलिप्सा, सामूहिक जीवन का हास आदि परिवर्तनों का यह एक कलात्मक दस्तावेज है। करैता गाँव के मेले से उपन्यास आरम्भ होता है और खेतिहर मजदूरों तथा जमींदारों के संघर्ष तक पहुँचता है। उपन्यास ग्रामीण जीवन के यौन सम्बन्धों की जटिलता को अपने अन्दर समेटते हुए आगे बढ़ता है। जमींदार जयपाल सिंह ग्राम पंचायत के प्रधान हैं ... जो अपने स्वार्थों के लिए इसका प्रयोग करते हैं। पटनाहिया भाभी, उसका पति, मुंशी जवाहरलाल, मास्टर गोपाल और श्री शिवराम आदि के यौन पर सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण पड़े प्रभावों का जटिल यथार्थ है। श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग दरबारी' रंगनाथ के गाँव के एक स्कूल की राजनीति को कथानक केन्द्र में ग्रहण करके लिखा गया बहुचर्चित उपन्यास है। प्रिंसिपल के चुनाव की राजनीति से आरम्भ कथानक सरकारी संघ की दलबन्दी से होता हुआ स्कूल की मैनेजिंग कमेटी के चुनाव तक को अपने अन्दर समेटे हुए व्यवस्था की विसंगतियों को व्यंग्य के माध्यम से उद्घाटित करता है। उपन्यास का केन्द्र शिवपालगंज है जहाँ छंगामल इण्टर कॉलेज दलबन्दी और राजनीति का अखाड़ा है। रंगनाथ रूपन बाबू, वैद्यजी, छोटे पहलवान और प्रिंसिपल घटनाओं को आगे बढ़ाते और उनके औचित्य को सिद्ध करते दिखाई देते हैं। उपन्यास में कृषि के औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप गाँव में जन्में नये वर्ग की प्रभुसत्ता तथा वहाँ उत्पन्न नैतिक पतन का सजीव चित्रण देखने को मिलता है।

जल टूटता हुआ में रामदरश मिश्र कछार के एक गाँव तिवारीपुर के परिवेश और पात्रों के माध्यम से ग्रामीण जीवन शैली के जटिल यथार्थ को गहराई से सामने लाते हैं। उपन्यास में वैयक्तिक और सामाजिक दो स्तर हैं और इन्हीं दोनों स्तरों के पारस्परिक द्वन्द्व से परिवेश उभरकर सामने आता है। महीप सिंह और गनपतिया, महिपाल और सतीश और राजकुमार की टकराहट दूसरे स्तर पर सामाजिक रूप ले लेती है और हिन्दू, मुसलमान, जमींदार, मजदूर की टकराहट बन जाती है। 'धरती धन न अपना' में जगदीश चन्द्र ने पंजाबी ग्राम अँचल के एक छोटे से गाँव 'घोड़ेवाहा' के एक मोहल्ले चमादड़ी को केन्द्र बनाकर दलित वर्ग की मानसिकता को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। जगदीश चन्द्र कृत 'कभी न छोड़े खेत' उपन्यास ग्रामीण जीवन और कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित है। यह उपन्यास पंजाब प्रदेश के गाँव का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण

भारतवर्ष के ग्रामीण जीवन की विशाल झाँकी प्रस्तुत करता है। पुश्तैनी दुश्मनी नीलोवालिये और नम्बरदारों के बीच पीढ़ी-दर पीढ़ी चली आने वाली दुश्मनी को कथा का केन्द्र बनाया है। पूँजीवादी व्यवस्था में पुलिस विभाग की उद्दण्डता और अमानवीयता का, न्यायालयों में मुँह फाड़कर रिश्वत माँगने का, सरकारी, अस्पतालों में चिकित्सकों के भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। सामन्ती मूल्यों और पूँजीवादी व्यवस्था के आम संकट को यह उपन्यास व्यक्त करने में सफल रहे हैं। पूर्व उक्त सभी उपन्यास उत्पादन सम्बन्धों में आमूलचूल परिवर्तन होने के कारण भी कृषि व्यवस्था से जुड़े हुए व्यक्तियों में सामन्ती मूल्य स्थिरता से चिपके हुए हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास ने आज़ादी के पहले से ही ग्रामीण जीवन संदर्भों को

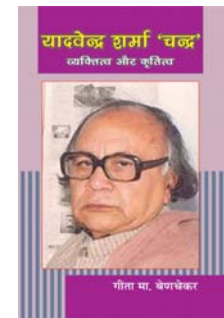
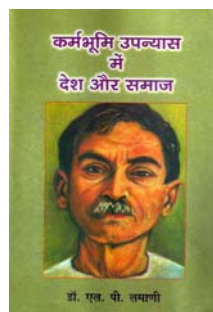
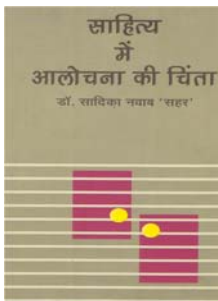
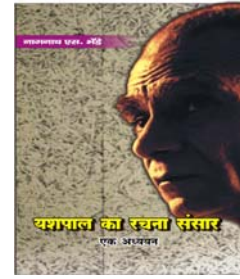
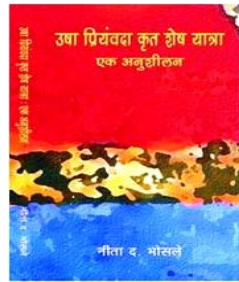
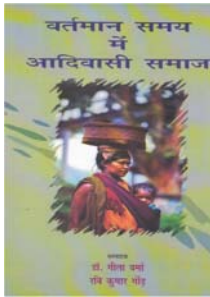
अनदेखा नहीं होने दिया है, परन्तु स्वतंत्रता के बाद भारतीय ग्रामीण जीवन की समग्र तस्वीर हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से देखी जा सकती है।

#### सन्दर्भ-

1. डॉ. कुंवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पांडुलिपि प्रकाशन, ई-11/5, कृष्णनगर, दिल्ली, सं. 1976 पृ. 7
2. वही, पृ. 7
3. वही, पृ. 8
4. नागार्जुन, बलचनमा, पृ. 53
5. राही मासूस रजा, आधा गाँव, 1966, पृ. 11

शोधार्थी हिन्दी विभाग, ए.एम.यू. अलीगढ़

## वाङ्मय बुक्स अलीगढ़ (9044918670)



# एक जिंदगी, ऐसी भी

(‘नियतिहीनता’ के विशेष संदर्भ में)

प्रा. बाबासाहेब माने

अनुवाद की प्रक्रिया प्राचीन काल से हमारे साहित्य में चली आ रही है। इस प्रक्रिया के कारण हमें भिन्न-भिन्न देशों का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक ज्ञान मिलता है। अनुवाद से ही हम दुनिया के अनेक देशों के भिन्न-भिन्न स्थानों एवं वहाँ स्थित समाज के रीति-रिवाज, परंपराएँ, कानून तथा समाज पर हो रहे अन्याय-अत्याचारों से परिचित होते हैं। अनुवाद की प्रक्रिया वैसे तो प्राचीन काल से चली आ रही है, किंतु समकालीन युग में विश्व एक ‘ग्लोबल विलेज’ बनने के कारण यह तेज गति से बढ़ी हुई दृष्टिगोचर होती है। आज अनेक देशों की कहानियों, उपन्यासों एवं कविताओं का हिंदी में बड़ी मात्रा में अनुवाद हो रहा है। इसी की एक कड़ी डॉ. इंदु मजलदान द्वारा अनुदित उपन्यास ‘नियतिहीनता’ है। यह कृति ‘इमरै कैरतेस’ ने हंगरी भाषा में लिखी है। हंगरी भाषा में इसका शीर्षक है ‘SORSTALANSAG’ अर्थात् ‘सॉर्टलनसग’ है। इमरै कैरतेस का जन्म 9 नवम्बर, 1929 को ‘बुदापैश्ट में ‘यहूदी’ परिवार में हुआ था। मात्रा पंद्रह वर्ष की आयु में सन् 1944 में उन्हें ‘ऑशविट्स’ और उसके बाद ‘बुखेनावॉल्ड’ के कॉन्सैट्रेशन कैम्प में भेज दिया गया था। सौभाग्य से एक वर्ष बाद ही सन् 1945 में एलाइड सेनाओं ने इस यहूदी कैम्पों में बचे हुए लोगों को आज़ाद किया था। इन कैम्पों में मिले अनुभवों को इमरै कैरतेस ने यथार्थता एवं मार्मिकता के साथ इस उपन्यास में अंकित किया है। जिसे पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि यहूदियों की हालत नाजीवाद के चंगुल में सचमुच ही खतरनाक थी। यहूदियों को बहुत ही बेरहमी से सताया जाता था। उन्हें कॉन्सैट्रेशन कैम्पों में एक से एक भयानक समस्याओं का सामना करना पड़ता था। इन समस्याओं को मजबूरन झेलने के बाद जीवन जीने की आदमी की प्रवृत्ति विकृति में बदल जाती थी। इसका वास्तविक ज्ञान हमें इस उपन्यास के द्वारा मिलता है। यह उपन्यास इमरै कैरतेस का प्रथम उपन्यास है। किंतु यह उपन्यास, उपन्यास कम आत्मकथा अधिक लगता है। चूँकि इसमें आत्मकथात्मक शैली का अधिक प्रयोग किया गया है। इसे साहित्य के सर्वोत्तम

पुरस्कार ‘नोबेल’ से 2002 ई. में नवाजा गया है। इसमें जीवन के अनेक गहन एवं गंभीर विषयों का ज्ञान है। इस संदर्भ में इंदु मजलदान ने स्वयं लिखा है कि “कैरतेस का पहला उपन्यास नियतिहीनता, जो उनके स्वयं के कॉन्सैट्रेशन कैम्प के अनुभवों पर आधारित उपन्यास है।” यह कृति हंगरी भाषा में सन् 1975 में प्रकाशित हुआ है। इसका रूप तो आत्मकथा का है, परंतु यह मात्र आत्मकथा से कहीं बढ़कर जीवन के कई गहन विषयों के बारे में बात करता है।

इस उपन्यास में यहूदियों पर लगाए गए खतरनाक कानूनों को भी लेखक ने अपनी आपबीती के साथ विस्तार से बताया है। हिटलर की नाजीवादी प्रवृत्ति ने यहूदियों पर अनेक बुरे कानून लाद दिए थे। उन्हें छोटी जाति का माना जाता था। उन्हें अपने कोट या कमीज पर ‘पीला सितारा’ पहनना अनिवार्य था। अगर गलती से भी पीला सितारा कहीं कमीज या कोट के अंदर असावधानी से छिप जाता तो वह गैरकानूनी माना जाता था। इस अपराध के लिए उन्हें कड़ी सजा मिलती थी। पीला सितारा पहनना यहूदियों के लिए लाजमी बात हो गयी थी। लेखक ने बताया है कि “मैं कोट के बटन खोल लेता मगर फिर सोचा हल्की-सी हवा के झोंके से अगर कोट उड़ने लगा तो पीला सितारा (यह उस समय यहूदियों को पहनना लाजमी था) ढँक जाएगा और यह गैरकानूनी काम हो जाएगा।”<sup>2</sup> दूसरा कानून यह था कि पीला सितारा पहने हुए लोगों को रात के आठ बजे के बाद सड़क पर दिखने की मनाई थी। साथ ही उन्हें अगर कहीं ट्राम या बस में यात्रा करनी है तो आखिरी सीट पर बैठकर ही यात्रा करना ज़रूरी था। तीसरा कानून यह था कि उन्हें शहर के बाहर जाने की भी मनाई थी। दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ चुका था जिसकी वजह से अनेक नए-नए कानून भी यहूदियों पर लाद दिए गए थे। इस संदर्भ में लेखक कहते हैं कि “अक्सर हवाई जहाज बम गिराने आने लगे थे शहर पर और साथ ही लाने लगे थे यहूदियों के लिए नए-नए कानून।”<sup>3</sup> चौथा कानून उन्हें फैक्ट्रियों में काम करते समय अगर गर्मी भी हो रही हो तो कपड़े उतारने की मनाई थी। चूँकि पीला सितारा

कपड़ों के साथ न उतरे। ऐसे अनेक कानूनों को यहूदी लोग हिटलर के जमाने में मजबूरन झेल रहे थे।

यहूदियों को हिटलर के नाजीवादी कॉन्सैन्ट्रेशन कैंप में जबरदस्ती भेज दिया जाता था। इसके लिए वहाँ की मिलटरी और पुलिस भी काम कर रही थी। लेखक के पिताजी को भी लेबर-कैंप में भेज दिया गया था। लेबर और अन्य कैंपों में निरापराध लोगों को कैदियों के साथ ही रखा जाता था। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार के कष्टदायी काम करने पड़ते थे। अन्न और पानी भी समय पर नहीं दिया जाता था। अन्न एवं पानी के लिए उन्हें बहुत ही तरसना पड़ता था। समय-समय पर गाली-गलोच एवं मार भी खानी पड़ती थी। पानी एवं अन्न के अभाव में अनेक लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था। इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'कैविशत्यर्ड' (कवैश द्यर्दय) जो स्वयं लेखक है, को भी इन कैंपों में काम करते अन्न एवं पानी के अभाव में अनेक बीमारियों से ग्रसित होना पड़ा था। लेकिन वह डॉक्टरों के उपचारों एवं अपने कैंप के साथियों की मदद से अपनी जिंदगी बचाने में सफल हो गया था। लेखक पंद्रह साल तक अपने पिता एवं सौतेली माँ के साथ खुशी-खुशी अपने परिवार में रह रहा था। किंतु उसके पिता को मजबूरन लेबर-कैंप में जाना पड़ा और उसके बाद उसे भी जबरन कॉन्सैन्ट्रेशन कैंप में भेज दिया गया। जब लेखक ऑशविट्स कैंप में पहुँचा तब से उसे अनेक अनुभव प्राप्त होने शुरू हुए, जो बहुत ही तकलीफदेह थे। लेखक जिस जोश एवं उमंग के साथ कैंप गया था। वापस आने तक उसका सारा जोश एवं उमंग खत्म हो गयी थी। वह मृत्यु से संघर्ष करने के लिए मजबूर बन गया था।

नाजी के विभिन्न कैंपों में यहूदियों के लिए जबरन जाना पड़ रहा था। लेबर-कैंपों में जाने वाले यहूदियों के प्रति वहाँ के उच्चभू समाज में अनेक प्रकार की धारणाएँ थीं। कई लोग मानवतावश सहानुभूति प्रकट कर रहे थे तो कईयों के मन में पहले जैसे ही घृणा थी। जब लेखक के पिताजी लेबर-कैंप के लिए जा रहे थे। उस वक्त उनकी ज़रूरतों की चीज़ें लाने के लिए लेखक, उनकी सौतेली माँ और पिताजी एक दुकान पर चले गये थे। दुकानदार चीज़ें माँगने के बाद ही समझ गया था कि ये चीज़ें लेबर-कैंप में ज़रूरी होती हैं। साथ ही उसे यह भी पता था कि लेबर-कैंप में जाने के बाद शायद ही कोई बचकर वापस आता है। इसलिए दुकानदार उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार कर रहा था। इसके विपरीत दूसरा है 'नानबाई' जो यहूदियों के लिए राशन बाँटता है। उसे यहूदियों से बहुत ही घृणा है। लेखक जब दुकान में रोटी का राशन लाने जाता है तो उसे यह नानबाई तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगता है और

बुरी तरह से पेश आता है। साथ ही जितना राशन देना था उससे कम ही राशन दे देता है। उसके इस बेरुखे व्यवहार को लेखक ने यूँ बयान किया है-“नानबाई ने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया, पास-पड़ोस के सभी लोग जानते थे कि वह यहूदियों से घृणा करता था। इसीलिए उसने मेरे लिए कुछ कम ही रोटी तौली।”<sup>4</sup> दूसरे विश्व युद्ध के पहले हिटलर के जुल्मों के शिकार अनेक यहूदी लोग हो रहे थे। इन जुल्मों के कारण उनकी मंशा यहाँ तक पहुँच गयी थी कि उन्हें अपने घर के सामान की ही नहीं, बल्कि जिंदगी की भी कोई गारंटी महसूस नहीं हो रही थी। लेखक के पिताजी अपनी दूसरी पत्नी यानी लेखक की सौतेली माँ को भरोसा दिलाते हुए कहते हैं- “न सिर्फ दुकानदारी में बल्कि जिंदगी की किसी चीज़ में आजकल कहीं कोई गारंटी नहीं है, जिंदगी की खुद की भी नहीं।”<sup>5</sup> इस कथन से स्पष्ट है कि यहूदियों को नाजी के चंगुल में फँसी जिंदगी अनिश्चत सी नज़र आने लगी थी। कई लोग अटकले भी लगा रहे थे कि अब जर्मन अपनी स्थिति को समझ गए हैं। वे बुदापैशत के यहूदियों को बड़े काम के मान रहे हैं ताकि सोवियत के खिलाफ लाभ उठाने में कारगर सिद्ध हो। साथ ही लोगों के मन में यह भी वास्तविकता भर गयी थी कि 'अंतर्राष्ट्रीय मार्केटिंग' में वे वास्तव में हथियार बन गए हैं। इस प्रकार की कई अटकलें तत्कालीन समाज में लगाई जा रही थीं। लेखक ने इस उपन्यास में अपने जीवन के साथ-साथ वहाँ के समाज में स्थित अनेक धारणाओं को भी स्पष्ट रूप से अंकित किया है।

प्राचीन काल से हो रहे अत्याचारों के कारण यहूदी लोगों की मानसिकता बदल चुकी थी। वे अपने भाग्य को ही कोसते रहते थे। उन्हें अपने जीवन में केवल ईश्वर ही एकमात्र रक्षक नज़र आने लगा था। लेखक के पिताजी जब लेबर-कैंप के लिए गए थे, उस वक्त लेखक उनकी सलामती के लिए हररोज प्रार्थना करते रहते थे। इस संदर्भ में वे बताते हैं कि “लॉयोश अंकल का कहना है कि प्रार्थना रोज चलती रहे ताकि आगे भी यूँ ही परमात्मा उनकी रक्षा करते रहें, क्योंकि हम सबका रक्षक एक केवल वही तो है।”<sup>6</sup> लेखक का 'कवैश जॉर्ज सहायक जवान' के रूप में काम के लिए चयन होता है। इसको चलाने में मिलटरी संगठन का हाथ है। इसलिए लेखक के साथ पंद्रह वर्ष की आयु वाले अठारह बच्चों को भर्ती कर लिया गया। इस काम के लिए जब लेखक एक दिन निकला तो अचानक उनकी बस को पुलिसवालों ने रोक लिया। लेखक और उनकी बस में बैठे सभी यहूदी युवाओं को जबरन नीचे उतारकर पहले उन्हें 'कस्टम हाउस' की ओर ले जाया गया और उसके बाद 'ऑशविट्स' कैंप में भेज दिया गया। यही से लेखक के जीवन की असली परीक्षा शुरू हुई। यहाँ जाते समय उन्हें रात के

समय घोंड़ों के अस्तबल में रहने के लिए जगह दी गयी। ट्रेन में बिठाकर तथा कई मील पैदल चलाकर उन्हें इस कैम्प में लाया गया। उस समय इन्हें खाने के लिए अनाज दिया गया था, किंतु पीने के लिए पानी की कमी महसूस हो रही थी। यहाँ आने के बाद उन्हें ईंटों के कारखानों में काम करना पड़ रहा था। जहाँ जवान, बड़े-बूढ़े, औरतें और हर उम्र के बच्चे भी थे। वहाँ लेखक को अनेक लोग मिलते हैं, जो लेखक की तरह ही बंदी बनाये हुए थे। वहाँ बंदी एक आदमी जो अपनी माँ के लिए दवाइयाँ लेकर घर जा रहा था। वे दवाइयाँ वैसे ही उसके बैग में थी। जब यहाँ के पुलिसवालों ने उसके रकसैक पर छापा मारा तो उसमें दवाइयाँ और खाने-पीने की चीजों को देख वे बहुत क्रोधित हो उठे। उन्होंने इस सामान को कालाबाज़ारी लाया हुआ सामान घोषित किया और उस आदमी की खूब पिटाई की। जिससे उसका चेहरा सूज गया और रंग-बिरंगे जख्मों से भर गया। उस समय “वह व्यर्थ ही समझता रहा कि यह सब पुराने स्टॉक का बचा-खुचा सामान है और केवल उसकी बीमार माँ के लिए है, पर वे यही आरोप लगाते रहे कि उसका काले बाज़ार के धंधे में जरूर कुछ हाथ है।”<sup>77</sup> इस प्रकार के कई आरोप यहाँ के यहूदियों पर लगाकर उन पर अन्याय-अत्याचार किया जा रहा था। अगर किसी के पास कीमती समान या सोने तथा चाँदी के जेवरात होते तो उन्हें भी मिलटरी पुलिसवाले निकाल कर ले लेते थे। यानी इन लोगों के पास कुछ न बचे ताकि ये किसी को इन जेवरातों का लालच देकर भाग न निकले।

ऑशवित्स में लेखक की प्रताड़ित जिंदगी का सिलसिला शुरू हो गया था। यहाँ लेखक ने केवल तीन दिन ही बिताए थे, किंतु इन तीन दिनों में लेखक और उसके साथ बंदी अनेक युवाओं, औरतों एवं बुजुर्गों को अनेक प्रकार की तकलीफों को झेलना पड़ा था। यहाँ खाने के लिए केवल एक रोटी का टुकड़ा और उसके साथ मार्जरीन मिलता था। सुबह नाश्ते के समय जो सूप मिलता था। उसे पीने की इच्छा भी नहीं होती थी। इतना खराब सूप उन्हें दिया जाता था। ‘ऑशवित्स’ की खाने की पद्धति के बारे में लेखक बताते हैं कि “ऑशवित्स में खाने का सिस्टम काफी चकराने वाला था। सुबह जल्दी से कुछ पीने को मिल जाता था, जैसे कॉफी। नौ बजे तक सूप आ जाता था जो दिन का खाना भी होता था। उसके बाद काफी देर तक कुछ नहीं, शाम को गोधूलि के समय तक, तब रोटी मिलती थी मार्जरीन के साथ हाजरी से पहले और इस प्रकार तीसरे दिन तक मैंने अपनी अत्यधिक भूख की पीड़ा से समझौता कर लिया था।”<sup>78</sup> सुबह-सुबह उन्हें ठंड में ही जगाया जाता था और केवल सूप देकर काम में जुटाया जाता था। सीमेंट की बारियाँ एक

स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना, ईंटों को ढोना, सीमेंट की टोकरियाँ भरना इत्यादि काम इनके द्वारा करवाये जाते थे। ऐसी अवस्था में लेखक और उसके साथियों को मुश्किल से अपना जीवन गुज़ारना पड़ रहा था। अगर कोई आदमी किसी काम में ढिलाई बरतता या अनायास ही किसी के द्वारा काम में कोई गड़बड़ी होती तो उसे वहाँ के मिलटरी वालों की मारपीट का शिकार होना पड़ता था। ये लोग बाहर न जाए इसलिए उनके बैरेक के चहुँ ओर जो बाढ़ लगाई गयी थी और उसमें करंट छोड़ दिया जाता था। इसी तरह के अन्यायों के कारण यहाँ मरने वाले लोगों की तादाद दिन-ब-दिन बढ़ने लगी थी। एक तो उन्हें समय पर खाना नहीं मिलता था और जो मिलता था तो वह एकदम खराब रहता था, जिसे खाने का मन भी नहीं करता था। दूसरा किसी तरह से पेट भरने के लिए वह अन्न अगर गले के नीचे उतार भी दें तो पीने के लिए पानी भी नहीं मिलता था। तीसरा ऊपर से जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी सो अलग। परिणामस्वरूप पेचिश या अन्य कई बीमारियों से लोग तुरंत ही मर जाते थे।

यहाँ के बाद लेखक और उसके साथ बंदी बनाए लड़कों को ‘बुखैनवॉल्ड’ के कॉन्सैंट्रेशन कैम्प में लाया गया। यहाँ के हालात तो उससे भी बद्दतर थे। इन हालातों में भी लेखक किसी-न-किसी रूप में जीवित रहना चाहता था। यहाँ पर सभी लोगों का परीक्षण किया गया था और उन्हें तिकौने कपड़े पर यू अक्षर बना कपड़ा दिया गया था। जो हंगरी का प्रतीक था। यहाँ पर सभी लड़कों को कैदियों की तरह ही नम्बर दिये गये थे। लेखक को भी यहाँ नंबर मिला था। जो नम्बर 64921 था। अब उन्हें नाम बताने की इजाज़त नहीं थी, केवल नंबर बताना ही ज़रूरी था। यहाँ लेखक और उनके साथियों को रहने के लिए एक छोटा-सा टेंट दिया गया। सोने के लिए जगह बहुत तंग थी, फिर भी उसमें किसी तरह से सोना पड़ रहा था। भूसे से भरे हुए बिस्तरों पर सोना पड़ रहा था। यहाँ के प्रबंध के बारे में लेखक ने बताया है कि “कँटिली बाढ़ यहाँ से दूर भी थी और उस पर बिजली का करंट भी नहीं दौड़ रहा था। मगर जो रात को यूँ ही टेंट के बाहर कदम निकालेगा उसे शिकारी कुत्ते चीरकर रख देंगे ऐसी चेतावनी दी गयी थी।”<sup>79</sup> इस कैम्प के बाद ‘जाइत्स’ नामक स्थान के कैम्प में लेखक और उसके बच्चे हुए साथियों को ले जाया गया। जाइत्स में भी काम के बारे में वही हालात थे। हररोज काम करना पड़ता था। अगर काम ठीक से नहीं हुआ तो सजा मिलती थी। यहाँ पर इतना काम करना पड़ता था कि कइयों को अनेक बीमारियाँ घेर लेती थीं। इस संदर्भ में लेखक बताते हैं कि “वह काम के पहले रोज की दोपहर थी। एक मालगाड़ी के डिब्बे में रोड़ी भरने का काम

था।....कुछ देर बाद मेरी हथेलियों में जलन-सी महसूस होने लगी, मैंने देखा उँगलियों के नीचे की जगह खूनाखून हो रही थी।<sup>10</sup> ....बददतर हालत में लेखक ने जीवन संघर्ष किया था। इस बददतर हालत का शिकार केवल लेखक ही नहीं था, बल्कि वे पूरे यहूदी कैदी या उन्हें बंदी कहा जा सकता है, जो अलग-अलग देशों के तमाम लोग थे, जिनको नाजीवादी विकृति ने शिकार बनाया था। इन कैदों में हंगरी, चैक, जर्मन, पोलैंड, स्लोवाक, यूक्रेनिया और सोवियत रूस के यहूदियों को कैदी बनाकर रखा गया था। इनमें से कइयों ने अपनी जिंदगी की अंतिम सांस इन्हीं यातनाओं को सहते हुए छोड़ दी थी और कई अंत तक संघर्ष करते हुए जीवन जी रहे थे। यहाँ पर काम करने के लिए जो कपड़े एवं जूते दिए गये थे। वे तो बिल्कुल ही खराब थे। काम करते समय कपड़ों से ज्यादा गर्मी महसूस होती थी। साथ ही जूतों से पाँवों में कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती थी। इसी का हाल बताते हुए लेखक ने लिखा है कि “इन जूतों ने, कम से कम मुझे, बहुत परेशान किया था। आमतौर पर अपने कपड़ों से, जो हमें कॉन्सैंट्रेशन कैम्प में दिए गए थे, मैं संतुष्ट हो ही नहीं सकता था, उनमें कई गलतियाँ थी, और वे व्यावहारिक भी नहीं थे।<sup>11</sup> लेखक केवल जीने की जीजीविषा के कारण ही जीवित रह सका था। वरना उसकी मृत्यु भी कब की हो चुकी होती, जैसे अन्यों की हो गयी थी। लेखक अपने जीने की ललक के बारे में कहते हैं- “इसमें कोई शक नहीं की मैं जी रहा था, चाहे टिमटिमाता हुआ, चाहे जड़ तक खोखला हुए, पर मुझमें अब भी कुछ था, जिंदगी की लौ, जैसा कहा जाता था- या कम से कम मेरा शरीर तो था ही, इसके बारे में दावे के साथ कह सकता था, बस यह जरूर है कि उसमें मैं खुद कहीं नहीं था।<sup>12</sup> लेखक की हालत ‘जाइत्स’ में बहुत ही खराब हो चुकी थी। दिन-ब-दिन उनकी तबीयत गिरती जा रही थी। वह एक कमजोर आदमी बन चुका था। अगर वह आम लोगों की तरह अपने घर परिवार में रहकर जिंदगी जीता तो उसे कमजोर बनने के लिए कम-से-कम पचास-साठ साल लग जाते, परंतु वह यहाँ केवल तीन महीने में ही बहुत कमजोर बन गया था। जैसे उसे लगता था कि अब उसका शरीर उसका साथ छोड़ रहा है- “मैं कॉन्सैंट्रेशन कैम्प के लिए भी यही कह सकता हूँ। वरना क्या मैं कभी सोच भी सकता था कि इतनी जल्दी मैं मुरझा कर एक बेहद कमजोर आदमी में परिवर्तित हो जाऊँगा। घर पर इसके लिए काफी समय लगता-कम से कम पचास-साठ साल। जबकि यहाँ तीन महीने ही काफी थे उसके लिए कि मेरा शरीर मुझे धोखा दे जाए।<sup>13</sup> इन कैदों की विभिन्न यातनाओं के कारण तथा अन्न एवं पानी के अभाव के कारण जब वह बीमारी से पूरी तरह से

ग्रसित हो गया। तब उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया। इस अस्पताल में प्यैत्का और बिशेक नामक नर्सिंग असिस्टेंट ने लेखक की बहुत ही सहायता की। यहाँ के डॉक्टरों और इन नर्सिंग असिस्टेंटों के माध्यम से लेखक किसी तरह से जीवित रह सका था। इसके अतिरिक्त लेखक की जीवित रहने की मुख्य बात यह थी कि उसके पिताजी ने लेबर-कैम्प जाने से पहले अपनी दूसरी पत्नी यानी लेखक की सौतेली माँ की जिम्मेदारी लेखक पर सौंपी थी। इसलिए लेखक ने कैम्पों की अनेक यातनाओं को सहन करते हुए जीवित रहने का सफल प्रयास किया था। बाद में जब एलाइड सेना के माध्यम से अन्य यहूदियों के साथ लेखक को भी आजादी मिली। तब लेखक अपने गाँव ‘बुदपैश्त’ में वापस आया तो उसे पता चला कि उसके पिताजी ऑस्ट्रिया के लेबर-कैम्प में मर गए हैं और सौतेली माँ ने दूसरा विवाह कर लिया है। उस समय लेखक की जीवन जीने की पूरी तमन्ना ही खत्म हो जाती है। लेखक की इस दर्दभरी आपबीती को देखने के बाद यह विचार अनायास ही मन में कौदता है कि एक जिंदगी ऐसी भी होती है जो मुसीबतों को पार करने के बाद जीने के लिए प्रेरित करने की बजाय मरने के लिए उकसाती है। अतः ऐसी जिंदगी कभी किसी को नहीं मिलनी चाहिए, परंतु जिंदगी के प्रति लेखक में जो आत्मविश्वास भरा हुआ वही आत्मविश्वास लेखक को भविष्य की जिंदगी जीने के लिए प्रेरित करता है। शायद यही उद्देश्य इस उपन्यास का प्रतीक होता है।

#### संदर्भ-

1. नियतिहीनता-मूल लेखक-इमरै कैरतेस, अनु. इंदु मजलदान, भूमिका, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2006
2. वही, पृ. 12
3. वही, पृ. 26
4. वही, पृ. 17
5. वही, पृ. 18
6. वही, पृ. 27
7. वही, पृ. 81
8. वही, पृ. 85
9. वही, पृ. 96
10. वही, पृ. 85
11. वही, पृ. 109
12. वही, पृ. 121
13. वही, पृ. 109

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्रीशिव छत्रपति महाविद्यालय, जुन्नर जिला-पुणे (महाराष्ट्र)

# महादेवी के काव्य में दार्शनिक चिंतन

अनीता आर्या

भारतीय संस्कृति को गरिमा और अर्थवत्ता प्रदान करने में दर्शन की अपनी अनूठी भूमिका रही है साहित्य का मूल आधार दर्शन का समन्वित दृष्टिकोण ही है। महादेवी भारतीय संस्कृति की श्रद्धावान उपासिका रही हैं। यही कारण है कि उनके काव्य में दार्शनिक तत्त्वों का समावेश उपलब्ध होता है। कविता में दर्शन का संकेत उनकी अपनी निजी विशेषता है। महादेवी के काव्य में दर्शन और चिन्तन यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध होने से उनके दार्शनिक तथा चिन्तक के स्वरूप की पुष्टि होती है। सृष्टि के विकास पर दृष्टिपात करने से यह मालूम होता है कि मानव जीवन के सुचारु रूप से परिचालन में भारतीय दर्शन की विविध धाराओं यथा वैदिक तथा अवैदिक, आस्तिक तथा नास्तिक, बौद्ध तथा द्वैताद्वैत आदि का सहयोग रहता है। महादेवी के काव्य के वैशिष्ट्य का उद्घाटन करने में भी दर्शन के तत्त्वों का सहयोग स्पष्टतः परिलक्षित होता है। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहते हैं कि- “दर्शन का सत्य उनकी प्रतिभा के पारस को छूकर कला के सौन्दर्य में इस प्रकार परिवर्तित हो गया है कि अनेक बार उसके मूल रूप को खोज पाना कठिन हो जाता है। इतना ही नहीं महादेवी के पास जहाँ कवि का हृदय और चित्रकार की कल्पना है वहाँ चिन्तक का मस्तिष्क भी है।”<sup>1</sup>

महादेवी ने वेद और वेदान्तों का सम्यक् अध्ययन किया है। अपने काव्य में उन्होंने नीर-क्षीर विवेकी राजहंस की भाँति समन्वित स्वरूप को सार रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उनके काव्य में ऋग्वेद की ऋचाओं, उपनिषद, अद्वैत, द्वैत, सूफीमत, गाँधीवाद आदि अनेक धाराओं और सिद्धांत संकेत स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। महादेवी के दार्शनिक चिन्तन के स्वरूप को निम्न कतिपय शीर्षकों के आलोक में स्पष्ट किया जा सकता है। डॉ. शोभानाथ यादव का अभिमत है- “इस संदर्भ में यह बात उल्लेखनीय है कि महादेवी कवयित्री हैं दार्शनिक नहीं। इसलिए दर्शन के संकेत ही उनमें मिलते हैं। उसके प्रतिपादन का प्रयत्न नहीं है। दूसरे कविता की अपनी प्रकृति होती है जो दर्शन को भावात्मक रूप से व्यक्त करती है।”<sup>2</sup>

भारतीय दर्शन की दो प्रमुख धाराएँ वैदिक एवं अवैदिक या आस्तिक एवं नास्तिक वर्गों में विभक्त की जाती हैं। एक का चरम विकास यदि अद्वैत दर्शन के रूप में हुआ तो दूसरी की सर्वोत्तम उपलब्धि बौद्ध दर्शन है। वस्तुतः अद्वैत दर्शन एवं बौद्ध दर्शन भारतीय चिन्तता की दो परस्पर-विरोधी धाराओं की सर्वोत्तम उपलब्धियाँ हैं जिनके पारस्परिक द्वन्द्व के इतिहास में ही भारतीय चिन्ता के स्वर्ण-युग की कहानी छिपी हुई। जब वैदिक विचारधारा अपने चरम विकास तक पहुँच गयी तो उसकी प्रतिक्रिया में बौद्ध मत का आविर्भाव हुआ तथा बौद्ध मत की अतिलोकप्रियता के विरुद्ध ही शंकर ने अद्वैतवाद की पुनर्स्थापना की। इस प्रकार बौद्ध एवं शंकर मत परम्परा के अनुसार एक-दूसरे के सर्वथा विरोधी माने जाते हैं, पर यह विचित्र बात है कि “महादेवी ने इन दो परस्पर विरोधी मतों को आत्मसात् करके एक ऐसा रूप दे दिया है कि जिससे इनमें कहीं भी कोई विरोध दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि महादेवी की अनुभूति को साक्ष्य बनाया जाय तो स्वीकार करना पड़ेगा कि ये दोनों दर्शन एक-दूसरे के विरोधी नहीं अपितु एक-दूसरे के पूरक, साधक एवं अंग हैं।”<sup>3</sup> कवयित्री की विराट् चेतना, व्यापक दृष्टि एवं गंभीर अनुभूति ने इन दोनों को दुग्ध-जल की भाँति समन्वित करते हुए एक ऐसे रूप में व्यक्त किया है जहाँ दोनों का अन्तर अदृश्य हो जाता है और मेल सघन हो जाता है।

महादेवी ने वेद और वेदान्तों का सम्यक् अध्ययन किया है। अपने काव्य में उन्होंने नीर-क्षीर विवेकी राजहंस की भाँति समन्वित स्वरूप को सार रूप में प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उनके काव्य में ऋग्वेद की ऋचाओं, उपनिषद, अद्वैत, द्वैत, सूफीमत, गाँधीवाद आदि अनेक धाराओं और सिद्धांतों के संकेत स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। महादेवी के दार्शनिक चिंतन के स्वरूप को निम्न कतिपय शीर्षकों के आलोक में स्पष्ट किया जा सकता है-

## ब्रह्म

महादेवी ब्रह्म की व्यापकता का आभास संपूर्ण सृष्टि में



तीव्रता से अनुभव करती हैं। उनकी धारणा है कि जिस प्रकार शिशु के रुदन में जननी का अस्तित्व तथा चित्र की जड़ता में चित्रकार का ज्ञान छुपा रहता है, उसी प्रकार सृष्टि की प्रत्येक वस्तु तथा पदार्थ से ब्रह्म की सत्ता प्रतिभाषित होती है। दृष्टव्य है इसी आशय की ध्वनित करने वाली कतिपय पंक्तियाँ -“छिपा है जननी का अस्तित्व/सदन में शिशु के अर्थ विहीन। मिलेगा चित्रकार का ज्ञान/चित्र की जड़ता में ही लीन।”<sup>4</sup>

निखिल विश्व की नियामक और संचालक सत्ता के प्रति महादेवी अनन्य आस्था रखती हैं। “वेदों के अनुसार इस जड़ जगत का सूत्रधार चेतन पुरुष है, उसके हाथों में कर्ममय जगत की बागडोर है। विभिन्न देवता इसी चेतन सत्ता के विभिन्न रूप हैं।”<sup>5</sup>

सब में सदा व्याप्त इसी अक्षर ब्रह्मतत्व के लिये गीता में भगवान ने कहा है - “अक्षर ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्मभू यते” यह अक्षर अर्थात् कभी भी नष्ट न होने वाला तत्त्व ब्रह्म है और इसलिए प्रत्येक वस्तु का मूल भाव अध्यात्म कहा जाता है क्योंकि ‘यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति यह सनातन अव्यक्त तत्त्व सब भूतों में व्याप्त होते हुये भी सब भूतों के नाश होने पर भी कभी नष्ट नहीं होता।”<sup>6</sup> उनका प्रियतम अविनाशी और असीम है। उसके क्षणमात्र के मिलन की कल्पना की अनुभूति मात्र से ही उनका प्रेयसी हृदय विभोर हो उठता है। इस प्रकार महादेवी एक ओर तो उपनिषदों से प्रभावित दिखाई पड़ती हैं तो दूसरी ओर अपने काव्य के माध्यम से समन्वित दृष्टिकोण को अपनाने पर प्रमुखता से बल देती प्रतीत होती हैं। महादेवी ने स्वयं को आत्मा और परम प्रिय को परमात्मा के रूप में चित्रित कर उसमें लय होने की उत्कट कामना व्यंजित की है जो आत्मा-परमात्मा के चिर शाश्वत और पारस्परिक अखण्ड अनुराग युक्त सम्बन्ध का पूर्ण उदात्तता से बोध करती है-“आ गये एक क्षण में समीप/आलोक तिमिर के दूर छोर/धुल गया अश्रु में करुण हास/हो गई हार जय में विलीन।”<sup>7</sup>

आत्मा की लघुता और परमात्मा की विशालता सर्वविदित तथ्य है। इसलिए महादेवी निज की लघुता का बोध करते हुए कहती हैं कि लहर सिन्धु को क्या परिचय दे सकती है। इस प्रकार महादेवी ने आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की शाश्वत और मधुरतम व्यंजना उपस्थित की है जो उनके हृदय की कोमलतम अनुभूतियों का प्रमाण प्रस्तुत करने में पूर्णतः समर्थ है।

## सृष्टि

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार अन्तर्यामी आत्मा ब्रह्म से पहले आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से पानी

और फिर पानी से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी से नाना प्रकार की औषधियाँ, औषधियों से अन्न और उस अन्न से यह मनुष्य शरीर रूप जीव उत्पन्न हुआ। महादेवी का मत है कि वह परम शक्ति मात्र लीला करने की आकांक्षा के कारण अपने स्वरूप का नानाविध रूपों में विस्तार करती है। सृष्टि की रचना से पूर्व केवल उसी परम शक्ति पर ब्रह्म का अस्तित्व शेष था महादेवी इस धारणा को पुष्ट करती हैं-न थे जब परिवर्तन दिन-रात/नहीं आलोक तिमिर थे साथ। व्याप्त क्या सूने में सब ओर/एक कम्पन थी एक हिलोर।

महादेवी कहती हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि उसी परम प्रकाशमान होती है। सृष्टि का कण-कण उसी अखण्ड स्वरूप के अस्तित्व का बोध कराता है। उन्होंने ने परम्परागत लीक से हट कर जगत की मिथ्या और भ्रममूलक न मानकर उसे उस शक्ति का अंश मानकर उसके प्रति अपनी आस्था को व्यक्त किया है। उनकी अवधारणा है कि यह सृष्टि जीवात्मा के लिए ही नहीं अपितु परमशक्ति के लिए भी बन्दीग्रह के सदृश है। उनका मानना है कि इस सृष्टि का निर्माण आकाश और पृथ्वी के सम्पुटों से विनिर्मित सीपी की भाँति हुआ है।

## माया

माया के वशीभूत होकर ही आत्मा भौतिक जगत् के आकर्षण में उलझ जाती है। विषय वासनाओं के फेर में पड़ कर आत्मा अपने वास्तविक उद्देश्य से भटक जाती है। चित्त में उलझाव उत्पन्न हो जाता है और तब वह अपनी परम शक्ति को पहचान नहीं पाती। महादेवी स्वीकार करती हैं कि माया के कारण ही में समस्त विश्व में व्याप्त और समष्टि में अन्तर्निहित परम् आत्मा को नहीं पहचान सकी। माया के भ्रमिक जाल में आबद्ध हो जुगनू के प्रकाश में दिवसान्वेषण का प्रयास करती रही तथा जीवन में शुष्क रेतीले, सूखों को ही उपलब्धि मानती रही अर्थात् माया के स्वर्णिम भ्रामक पाश के कारण ही सार्वभौतिक सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकी -“अपने जर्जर अंचल में, भर कर सपनों की माया। इन थके हुए प्राणों पर, छाई विस्मृत की छाया।”<sup>8</sup>

महादेवी यह भी जानती हैं कि आत्मा की यह भ्रामक स्थिति माया के आवरण के रहने तक ही होती है। ज्यों ही यह छिन्न-भिन्न होता है वैसे ही आत्मा अपने स्वरूप को पहचान कर अपने वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति में तत्पर हो जाती है। आत्मा एक अनूठे आनन्द से भर उठती है। माया का दर्पण टूटते ही वास्तविकता प्रत्यक्ष हो जाती है। इस प्रकार महादेवी ने माया को सृष्टि उत्पत्ति तथा प्रिय के लुप्त होने का मूल शेष भाग, पृ. 63 पर.....

# हिन्दी सूफी काव्य में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियाँ

अफजाल अहमद

हिन्दी में प्रेमाख्यान परम्परा का सूत्रपात असाइत कवि द्वारा रचित हंसावली से माना जा सकता है, जिसका रचनाकाल सन 1370 ई. बताया गया है। हंसावली की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले आख्यानों में मुल्ला दाऊद की चंदायन(1379 ई.), कुतुबन रचित मृगावती(1503 ई.), जायसीकृत पद्मावत (1540 ई.), मंझन रचित मधुमालती(1545 ई.) उस्मानकृत चित्रावली(1613 ई.) तथा शेखनवी की ज्ञानदीप(1619 ई.) उल्लेखनीय हैं।<sup>1</sup>

विभिन्न कथा-कहानियों में बार-बार व्यवहृत होने वाली एक जैसी घटनाओं अथवा एक जैसे विचारों को कथानक-रूढ़ि की संज्ञा दी जा सकती है। हिन्दी में कथानक-रूढ़ि शब्द अंग्रेजी के फिक्शन मोटिफ का पर्याय है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सर्वप्रथम अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दी साहित्य का आदिकाल में ऐतिहासिक कथाओं में प्रयुक्त घटनाओं के संभावना पक्ष पर विचार करते हुये इस शब्द पर व्यापक रूप से चर्चा की है।<sup>2</sup>

हिन्दी सूफी काव्य का अध्ययन करने पर हमें लौकिक कथानक-रूढ़ियों के निम्न रूप प्राप्त होते हैं-

‘शकुनों द्वारा भावी सन्देश’ देने की रूढ़ि इस देश के कथाकारों को अत्यन्त प्रिय रही है। शकुन विचार की पद्धति वस्तुतः लोक जीवन की अपनी वस्तु है और कई प्रकार के लोक-प्रचलित विश्वासों पर आधारित है। शकुन (हिन्दी-सगुन) का वास्तविक अर्थ पक्षी होता है। इसके सन्दर्भ में जायसीकृत पद्मावत के एक शकुन वर्णन स्थल को लिया जा सकता है। रत्नसेन सिंहलद्वीप के लिए रवाना होता है और उसी समय-आगे सगुन सगुनिये ताका। दाहिने माछ रूप के टाँका।<sup>3</sup>

पद्मावत में जायसी ने अनेक शुभ शकुनों की सूची प्रस्तुत की है उसमें से मछली दधि और जलपूर्ण घट के संकेत अत्यन्त लोक प्रचलित हैं।

‘राक्षस द्वारा किसी स्त्री का हरण’ करना भारतीय साहित्य का अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। एकाधिक कथा काव्यों में इस रूढ़ि का पालन किया गया है। सूफी काव्यों में इस अभिप्राय का प्रयोग कई स्थलों पर मिलता है। कुतुबनकृत मधुमालती में चन्द्रगिरि का राजकुमार रुक्मिणी नाम की

राजकुमारी को राक्षस के चंगुल से छुड़ाता है। इसी प्रकार मंझनकृत मधुमालती में राजकुमार मनोहर राक्षस को मारकर उसके द्वारा हरण की गई राजकुमारी को मुक्त कराता है।

लोक कथाओं और उनसे प्रेरणा लेकर लिखे गए साहित्य में किसी ‘समुद्र यात्रा के समय जहाज का टूटना या डूबना’ उपस्थित किये जाने की रूढ़ि का अत्याधिक व्यवहार हुआ है। इन कथाओं की नायिकायें समुद्र पार किसी द्वीप की राजकुमारी हैं इसलिए समुद्र की यात्रा आवश्यक हो जाती है। पद्मावत, मधुमालती, इन्द्रावती, चित्रावली आदि की कथा में इसका प्रयोग किया गया है। मधुमालती में यह प्रिया प्राप्ति के लिये नायक योगी रूप धारण करने के बाद समुद्र यात्रा करता है। एक दिन अचानक समुद्र में भयानक तूफान आता है और चारों ओर अधंकार छा जाता है, दिशा का ज्ञान नहीं रह जाता तथा लहरों के आघात से बोहित टूट जाता है। नायक के अतिरिक्त अन्य सभी समुद्र में डूब जाते हैं।<sup>4</sup> चित्रावली में उसमान ने इस रूढ़ि के प्रयोग में थोड़ी नवीनता ला दी है। कवि ने यहाँ समुद्र की भयंकरता और लहरों में भ्रमित नौका का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन किया है। नायक पोत का टूटना निश्चित जानकर समुद्र में कूद पड़ता है, किन्तु नायिकायें मृत्यु की प्रतीक्षा करती रहती हैं। तभी अगस्त ऋषि की कृपा से जलपोत क्षण भर में चमत्कारिक ढंग से समुद्र तट पर पहुँच जाता है।<sup>5</sup> ‘पद्मावत’ में राक्षस रत्नसेन के जहाज को किसी बड़े भंवर में ले जाकर फँसा देता है, जहाज डूब जाता है और राजा-रानी बहकर दो विपरीत दिशाओं में चले जाते हैं।<sup>6</sup>

**स्वप्न या चित्र दर्शन**-जन्य प्रेम अपरिचित और अपूर्वदृष्ट नायक-नायिका को स्वप्न या चित्र में देखकर दोनों के मन में प्रेम का उदय भारतीय प्रेमाख्यानों का प्रचलित अभिप्राय है। भारतीय साहित्य में नायक-नायिका के पूर्वानुराग को बहुत महत्त्व दिया गया है। अतः प्रत्यक्ष रूप से मिलन कराने से पहले ही दोनों में प्रेम उत्पन्न करने के लिए स्वप्न या चित्र दर्शन-जन्य प्रेम के अभिप्राय का सहारा लिया है। नूर मुहम्मद की इन्द्रावती में नायक को रात को स्वप्न में एक उज्ज्वल दर्पण दिखाई देता

है। उस दर्पण में चन्द्रमा से भी अधिक उज्ज्वल एक सुन्दरी को देखता है-एक रात मह कुँवर सरेखा। सपन बीच दर्पण एक देखा।।/...../दर्पण में एक सुन्दर नारी। देखहु चन्दहु ते उजियारी।। 3।।

दूसरी रात में भी स्वप्न में उसे देखता है और राजा की यह स्थिति हो जाती है-राजै राज काज तजि दीन्हा। चिन्ता वह मुरत ही लीन्हा।।

दरबारियों और मंत्रियों द्वारा स्वप्न की अविश्वसनीयता का उपदेश दिये जाने पर भी उसके इस उन्माद में कोई कमी नहीं आती है। यह स्वप्न कन्या बाद में वास्तविक राजकुमारी सिद्ध होती है और उसके देश-नाम आदि का पता एक सिद्ध योगी द्वारा मालूम होता है। यहाँ तक कि वह योगी अपने योगबल से राजकुमार को कन्या के देश के नगर का दर्शन भी करा देता है।<sup>7</sup> उस्मानकृत चित्रावली में कोई देव सुजान कुमार को राजकुमारी की चित्रशाला में रख जाता है और वह वहाँ राजकुमारी के चित्र को देखकर उस पर मोहित हो जाता है और चित्रावली के चित्र के पास ही अपना चित्र बना देता है। सुजान के पुनः सो जाने पर देव उसे मढ़ी में पहुँचा देते हैं। चित्रावली अपनी सखी द्वारा चित्रसारी में अज्ञात पुरुष के चित्र की सूचना पाकर उसे देखने आती है। चित्र देखकर सुजान की तरह वह भी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आत्म-संज्ञा खो देती है-सुनि चित्रिनि चितसारी आई, देखि चित्र मुख रही लुभाई।/सहस कला होइ हियें सामना, निरखि रूप चित चेत भुलना।।<sup>8</sup>

इसी प्रकार मंझनकृत मधुमालती में कुछ अप्सरायें मनोहर नाम के राजकुमार को उसकी निन्द्रावस्था में राजकुमारी की चित्रसारी में रखा जाता हैं। दोनों जागते हैं, एक-दूसरे को देखकर आकृष्ट होते हैं और फिर सो जाते हैं। अप्सरायें राजकुमार को वापस यथास्थान पहुँचा आती हैं।<sup>9</sup>

प्राचीन कथा काव्यों में 'दैवी सहायता या हस्तक्षेप' के कई उदाहरण मिलते हैं। जायसीकृत पद्मावत के पार्वती-महेश खण्ड में पद्मावती के चले जाने के बाद रत्नसेन मूर्च्छा से जागकर उसके वियोग में आत्महत्या करना चाहता है तो महादेव कीर्ती का रूप धारण करके उससे आत्महत्या का कारण जानना चाहते हैं लेकिन रत्नसेन उनको पहचान लेता है और उनकी वन्दना करता है।

लोक-कथाओं में देवी-देवताओं द्वारा नायक-नायिका की परीक्षा लेने की बात अक्सर आती है। पद्मावत में इस रूढ़ि का सफल प्रयोग हुआ है। 'पार्वती-महेश' खण्ड में पार्वती एक सुन्दर अप्सरा का वेष धारण कर रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेती हुई कहती हैं-अब तजु जरन, मरन, तप जोगू। मौ सौ मानु, जनम भर भोगू।।<sup>10</sup>

पक्षियों द्वारा रूप गुण की प्रशंसा सुनकर नायक नायिका के परस्पर आकृष्ट होने की इस कल्पना ने सूफी कवियों का विशेष रूप से प्रभावित किया है। लोक प्रचलित कथा-कहानियों में पशु-पक्षी मनुष्य से बातचीत करते हैं, उनका दुःख-दर्द समझते हैं और यथा अवसर उनकी सहायता भी करते हैं। पद्मावती का पालित शुक 'हीरामन' बहेलिए द्वारा पकड़े जाने पर सिंहल के बाज़ार में एक ब्राह्मण व्यापारी को बेचा जाता है। ब्राह्मण उसे चित्तौण के राजा रत्नसेन के दरबार में पहुँचा देता है। एक दिन वह शुक(तोता) राजा रत्नसेन से पद्मावती के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन करता है। इस सौन्दर्य वर्णन को सुनकर राजा के मन में पद्मावती के प्रति आकर्षण जन्म प्रेम उत्पन्न होता है और वह उसे प्राप्त करने के लिए सिंहलद्वीप की यात्रा करता है। जायसी की तरह ही नूर मुहम्मद ने भी इन्द्रावती में मधुकर और मालती की प्रासंगिक प्रेम-कथा का प्रारम्भ इसी अभिप्राय को लेकर किया है। किन्तु नूर मुहम्मद ने सहायक अभिप्राय के रूप में दो शुकों की वार्ता और नायक द्वारा उसकी उपश्रुति का प्रयोग करके इस रूप-वर्णन और श्रवणजन्य आकर्षण को अपेक्षाकृत अधिक कौतूहलपूर्ण और चमत्कारिक बना दिया है। इन्द्रावती में मधुकर इस कथा-वार्ता में परोक्ष रूप से मालती के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उसके प्रति आकृष्ट होकर उसके प्रति मिलन की इच्छा से व्याकुल होता है। पद्मावत के शुक की तरह ही यह शुक भी पंडित और ज्ञानी है। उसी तरह पकड़ा जाता है, बाज़ार में बेचा जाता है और अन्त में राजा के यहाँ पहुँचता है।

अभिशाप, वरदान और तन्त्र-मन्त्र के प्रति लोक-मानस की पूरी आस्था रही है। अभिशाप और वरदान से संबद्ध ये लोक-व्यापी विश्वास सूफी साहित्य में ग्रहण किये गये हैं। शाप से पक्षी होने का उपयोग शेख मंझन ने मधुमालती में किया है। मधुमालती मनोहर नाम के राजकुमार से प्रेम करती है। जब यह रहस्य उसकी माँ पर प्रकट होता है तो वह उसे प्रेम त्याग देने का आग्रह करती है लेकिन अपनी आज्ञा का उल्लंघन पाकर उसे पक्षी होने का शाप देती है।<sup>11</sup>

किसी राजकुमार का रास्ता भूलकर या किसी अन्य प्रकार से किसी निर्जन स्थान या उजाड़ नगर में पहुँचना और वहाँ किसी सुन्दरी से उसकी भेंट होना, लोक कथाओं का अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। कुतुबन कृत मृगावती में राजकुमार मृगावती को ढूँढ़ता हुआ समुद्र से पहाड़ी क्षेत्र में पहुँचता है और रुक्मिणि नायिका को राक्षस के पंजे से छुड़ाकर उससे विवाह कर लेता है। मधुमालती में नायक तूफान में जहाज के टूट जाने पर किसी पटरे के सहारे बहकर अज्ञात स्थान पर पहुँचता है और वहाँ उसकी भेंट प्रेमा नामक सुन्दर स्त्री से होती है।

नायक द्वारा योगी का वेश धारण करना लोक प्रचलित कथाओं में नायिका को खोजने और उसे प्राप्त करने के लिए अत्यन्त प्रचलित कथानक रूढ़ि है। प्रेम-कथाओं में घटनाओं को नयी दिशा देने की दृष्टि से तो यह अभिप्राय उपयोगी है साथ ही प्रेम की महत्ता और चारित्रिक उत्कर्ष की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। स्वप्न या चित्र में नायिका को देखने अथवा उसका रूप वर्णन सुनने के बाद इन कथाओं में नायक की विरह-व्यथा इतनी बढ़ जाती है कि वह सभी ऐश्वर्य-विलास का त्याग करके योगी का वेश धारण कर लेते हैं। इस अभिप्राय का महत्त्व इतना ही समझा जा सकता है कि सूफी काव्यों तथा परवर्ती अन्य सभी प्रेमाख्यानक काव्यों में जितने यांत्रिक ढंग से इस अभिप्राय का उपयोग किया गया है, उतना कदाचित अन्य अभिप्राय का किया गया हो। पद्मावत, मधुमालती, मृगावती आदि में इस अभिप्राय ने वर्णन विस्तार के कारण कथागत अभिप्राय के साथ ही काव्यात्मक अभिप्राय का रूप भी ग्रहण कर लिया है। मृगावती में नायक मृगावती को ढूँढ़ने के लिए योगी का वेश धारण करता है। मधुमालती में राजकुमार कहानी के अन्त में मधुमालती को ढूँढ़ता हुआ योगी के वेश में वापस लौटता है। पद्मावत में योगी खंड में काव्य रूढ़ि और कथानक रूढ़ि दोनों ही रूपों में यह कथानक प्रयुक्त हुआ है। वास्तव में लौकिक प्रेम की उदात्ता के साथ ही अलौकिक प्रेम की व्यंजना उद्देश्य होने के कारण नायक को विरक्त योगी के रूप में चित्रित करने की परंपरा प्रारम्भ हुई क्योंकि यह मुख्यतः ऐसे ही प्रेमाख्यानों का अभिप्राय है। पद्मावत में यह अभिप्राय ऐसे प्रयुक्त हुआ है-तजा राज राजा भा जोगी ॥औ किंगरी कर गहैउ वियोगी ॥<sup>12</sup>

प्रकृति वर्णन और विरह निवेदन करना प्रेमाख्यानक काव्यों की प्रचलित कथानक रूढ़ि है। पद्मावत में षड्ऋतु वर्णन और बारहमासा वर्णन की रूढ़ियों का पालन हुआ है। रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के पश्चात् छहों ऋतुओं की सम्मोहक पृष्ठभूमि में पद्मावती के सुख संभोग को उभारा गया है और नागवती वियोग खण्ड में प्रत्येक मास की प्रकृति को विरहणी के प्रतिकूल चित्रित करके नागवती के विरह-वियोग

को अत्यन्त मर्म स्पर्शी बना दिया गया है।<sup>13</sup>

इस प्रकार हिन्दी सूफी कवियों की कथाओं के अध्ययन से लौकिक कथानक रूढ़ियों के रूप को आसानी से समझा जा सकता है। सूफी कथाओं में प्रचलित कथानक-रूढ़ियाँ अधिकतर लोक कथाओं की ही देन है। सूफी साहित्य में उपलब्ध होने वाले और उसकी निर्मिति में योग देने वाले लोक-तत्त्वों के रूप में इन कथानक-रूढ़ियों को असंदिग्ध रूप से स्वीकार कर सकते हैं।

### संदर्भ-

1. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी वाङ्मय-वीसवीं सदी, पृ. 20
2. डॉ. हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, राष्ट्रभाषा परिषद्, बिहार, 1952 ई., पृ. 74
3. (सं.) रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2007 वि.
4. डॉ. माता प्रसाद गुप्त, मधुमालती (मंज़न), मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969
5. उस्मानकृत, चित्रावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
6. (सं.) रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007 वि.
7. इन्द्रावती, स्वप्न खण्ड, दो. 14-38
8. उस्मानकृत, चित्रावली, चित्रावलोकन, खण्ड 11
9. डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ, हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, अजमेर, 1953, पृ. 36
10. (सं.) रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007 वि.
11. डॉ. कमल कुलश्रेष्ठ, हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, अजमेर, 1953, पृ. 36
12. सं. रामचन्द्र शुक्ल, जायसी ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2007 वि., 1/1/12
13. रविन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति-साहित्य में लोक तत्त्व, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, पृ. 117

**शोध छात्र हिन्दी विभाग, ए.एम.यू., अलीगढ़**

# महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति

विकास कुमार

“..... रहस्यानुभूति भावावेश की आँधी नहीं वरन् ज्ञान के अनन्त आकाश के नीचे अज प्रवाहमयी त्रिवेणी है, इसी से हमारे तत्त्वदर्शक बौद्धिक तथ्य को हृदय का सत्य बना सके।”

“स्वभावगत वृत्तियों एवं माता-पिता के संस्कारों से पोषित महादेवी की काव्य-चेतना जब कविता के क्षेत्र में प्रवृत्त हुई तो अनायास ही उसमें वे सब प्रवृत्तियाँ प्रस्फुटित हो गई जिन्हें हम शास्त्रीय भाषा में ‘रहस्यवाद’ की संज्ञा देते हैं।”<sup>1</sup>

किसी भी व्यक्ति में, चाहे वह साहित्यकार हो या सामान्य सामाजिक, विभिन्न प्रवृत्तियों का उन्मेष एवं प्रतिफलन सामान्यतः इन आधारों पर होता है - 1. जन्मजात विशिष्ट या सामान्य वृत्ति की प्रेरणा से, 2. पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरणजन्य संस्कारों से, 3. अन्य व्यक्तियों के अथवा बाह्य सत्ता के प्रभाव, दबाव या आदेश से। वस्तुतः मूल प्रवृत्ति तो वही मानी जायेगी जो व्यक्ति की जन्मजात वृत्तियों पर आधारित हो। जहाँ तक महादेवी की रहस्योमुखी प्रवृत्तियों का संबंध है, वे उनके व्यक्तित्व की जन्मजात वृत्तियों पर आधारित सिद्ध होती हैं। व्यक्ति के मन में मूलतः दो प्रकार की वृत्तियाँ मानी जा सकती हैं - रागपरक और विरागपरक। महादेवी का व्यक्तित्व सांसारिक स्तर पर आरम्भ से ही विरागपरक दिखाई पड़ता है। उनकी रुचियाँ ऐन्द्रियक, भोगपरक एवं सांसारिक कम एवं बौद्धिक त्यागपरक एवं आध्यात्मिक अधिक दिखाई पड़ती हैं। इसीलिए उनमें वात्सल्य से ही जहाँ एक ओर ऐन्द्रियक स्तर के स्वादों के प्रति विरक्ति रही वहाँ फूल-पौधों में सजीवता, पशु-पक्षियों तक के प्रति व्यापक सहानुभूति तथा पर दुःख-कातरता की भावना रही। गृहस्थ जीवन के प्रति अरुचि, बौद्धभिक्षुणी बनने की इच्छा एवं वैवाहिक संबंधों का परित्याग - ये सब उनके मन की उन उदात्त वृत्तियों के सूचक हैं जो कि व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करती हैं। अवश्य ही ये वृत्तियाँ सामान्य नहीं हैं पर अस्वाभाविक भी नहीं कही जा सकती।

महादेवी की जन्मजात वैराग्यमूलक वृत्तियों को आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करने में उनके पारिवारिक

संस्कारों ने भी कम योग नहीं दिया। इस संबंध में वे स्वयं भी लिखती हैं - “एक ओर साधनापूत, आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता और वास्तविकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्वभूमि पर, माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरंभ की थी।” वस्तुतः कोरी भावुकता धर्म के क्षेत्र में भक्ति की ओर ले जाती है तो कोरी बौद्धिकता व्यक्ति को दार्शनिक बना देती है, जबकि रहस्यवाद में भावात्मकता बौद्धिकता पर आधारित या उससे समन्वित होकर उपस्थिति होती है। अतः कहना चाहिए कि रहस्यवादिनी महादेवी में माता और पिता दोनों के संस्कारों का समन्वित योग है।

उन्होंने जीवन के विकास के साथ-साथ अनुभूति की तीव्रता एवं अभिव्यंजना की सशक्तता तो प्राप्त की है - पर अपना पथ उन्होंने सदा अपरिवर्तित रखा है तभी तो वे यह कहने का साहस करती हैं-“मार्ग चाहे जितना अस्पष्ट रहा, दिशा चाहे जितनी कुहराच्छन्न रही, परन्तु भटकने, दिग्भ्रान्त होने और चली हुई राह में पग-पग गिनकर पश्चाताप करते हुए लौटने का अभिशाप मुझे नहीं मिला है। मेरी दिशा एक और मेरा पथ एक रहा है, केवल इतना ही नहीं वे प्रशस्त से प्रशस्ततर और स्वच्छ से स्वच्छतर होते गये हैं।”<sup>2</sup> रहस्यवादी ईश्वर को अज्ञात और अव्यक्त मानता है तथा दूसरी ओर यह अपने-आप में भ्रामक है। रहस्यवादी ईश्वर के निर्गुण रूप में आस्था रखता हुआ भी यह जानता है कि सृष्टि के कण-कण में, प्रकृति के नाना रूपों में तथा चेतन संसार के सभी प्राणियों में उसी परम शक्ति की सत्ता है, सारी सृष्टि उसी का व्यक्त रूप है। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि रहस्यवादी का आराध्य ‘अज्ञात और अव्यक्त’ होता है। हाँ, रहस्यवाद में

जिज्ञासा की स्थिति भी रहती है किन्तु वह केवल आरम्भिक अवस्था मात्र होती है-जिज्ञासा की तृप्ति के साथ-साथ ज्यो-ज्यों व्यक्ति का विश्वास दृढ़ होता जाता है त्यो-त्यों उसकी लालसा या भावना भी तीव्र होती जाती है। अतः यह कहना उचित नहीं कि रहस्यवादी की मिलन अभिलाषा अस्वाभिक या अव्यावहारिक है। वस्तुतः ईश्वर की सत्ता में सुदृढ़ विश्वास या आस्था को रहस्यवाद का पहला लक्षण माना गया है।

इनके काव्य में रहस्यानुभूति के सभी तत्त्व एवं अवस्थाएँ स्वाभाविक रूप में अवस्थित हैं। वस्तुतः इनका समस्त काव्य-साहित्य प्रिय-प्रेयसी की प्रणयानुभूति पर केन्द्रित है। कवयित्री अपने प्रिय के प्रति पूर्णतः आश्वस्त होते हुए भी उसके प्रति उत्कृष्ट भाव से मिलनेच्छा प्रकट करती हैं - इच्छा, कीतुहल तथा जिज्ञासा का भाव व्यंजित है-“कौन तुम मेरे हृदय में?/कौन मेरी कसक में नितमधुरताभरता अलक्षित,/कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ घिर झरता अपरिचित?/स्वर्ण-स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने विलय में?”<sup>3</sup>

प्रेम संबंध माना जाएगा - पर महादेवी का प्रिय तो सूक्ष्म ब्रह्म है - समस्त स्थितियों में उसी की विद्यमानता है। वस्तुतः ब्रह्म का यह स्वरूप उपनिषदों के अनुरूप है- सूनेपन के कारण उन्होंने सृष्टि का निर्माण किया। कवयित्री का कथन है-“हुआ क्यों सूनेपन का भान/प्रथम किसके डर में अम्लान,/और किस शिल्पी ने अनजान/विश्व-प्रतिमा कर दी निर्माण।”

ऐसी ब्रह्म से परिचय होना जीव के लिए जरूरी है, तभी वह उससे तादात्म्य स्थापित कर सकेगा। इसके लिए उसके प्रति पूर्ण विश्वास एवं आस्था का भाव अपेक्षित है।

महादेवी का काव्य प्रेम पर अवस्थित है। अपने प्रिय के प्रति एकनिष्ठ भाव से मिलनेच्छा प्रकट करना, मिलन होने पर वियोगजन्य भावों एवं स्थितियों का चित्रण इत्यादि के साथ, उसमें एकरूपता को स्वीकार करना महादेवी का वर्ण-विषय है। “जहाँ कवयित्री उस परमसत्ता के प्रति मिलनेच्छा, विच्छेद अथवा दूरी पर दुख व्यंजित करती है - वहाँ उसमें तथा स्वयं में अभेदता की स्थिति भी मानती है। यही रहस्यानुभूति का आधार है।”<sup>4</sup> स्वयं कवयित्री का रहस्यवाद के सम्बन्ध में अभिमत है जब प्रकृति की एकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके असीम हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश, एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा, परन्तु इस संबंध में मानव हृदय में सारी प्यास न बुझ सकी, क्योंकि मानवीय संबंधों में जबतक अनुरागजनित आत्म-विसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं

हो जाती, तब तक हृदय का अभाव नहीं दूर होता। “इसी से अनेक रूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म-निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यवाद रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया। मानव के कथन एवं महादेवी की विस्तृत व्याख्या में रागात्मकता संबंध अथवा प्रणयानुभूति को आधार माना गया है। इनके काव्य में इसी कारण रहस्यवाद के सिद्धान्तों की अपेक्षा उसकी भावात्मक दृष्टिसार्थक रूप में व्यक्त हुई है।”<sup>5</sup>

रहस्यवाद की शाश्वत और सार्वभौम परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है। हृदय की रागात्मिक वृत्ति को “स्व” की संकुचित सीमा से परे, समष्टि से एकाकार करते हुए अपने अन्तः को अलौकिक सत्ता के प्रति समर्पित करना रहस्यवाद कहलाता है। काव्य में रहस्यात्मक अनुभूतियों को तीन रूपों में विभक्त किया गया -1. जिज्ञासात्मक, 2. भावनात्मक एवं 3. साधनापरक। प्रथम अनुभूति परमतत्त्व के प्रति जिज्ञासा और आकर्षण से सम्बद्ध रहती है। कवि जगत रूपी चित्राधार पर विछिन्न चित्र बनाने वाले की खोज में व्याकुल हो उठता है-“कनक से दिन मोती सी रात,/सुनहली सांझ गुलाबी प्रात/मिटाता रंगता बारम्बार,/कौन यह जग का चित्राधार।”<sup>6</sup>

द्वितीय अनुभूति मधुर-भावों की ललित अभिव्यंजना से संबंध रखती तृतीय स्थिति में समरसता की अखण्ड स्थिति रहती है। रहस्यवाद प्रेम-संबंध है। वह आनन्दानुभूति का मार्ग है, एक प्रणयपथ है। जिसमें जिज्ञासा का आस्थावान होना, नितान्त अनिवार्य है। यह आस्था दृढ़ता की अपेक्षा रखती है। कवि की आत्मा परमात्मा से संबंध स्थापित करती है। रहस्यवादी प्रिय-प्रियतमा के मधुर संबंध के द्वारा ही अपनी छन्दगत मधुर भावानुभूति का प्रकटीकरण करता है।

महादेवी जी द्वारा अपने अनन्त प्रियतम को प्रकृति के प्रातिभासिक रूप में दर्शन किए गए हैं जिसकी आभा का एक-एक सृष्टि को आलोक दान देता है-“तेरी आभा का कण नभ को/देता अगणित दीपकदान।/दिन को कनक राशिपहनाता/विधु को चाँदी का परिधान।”<sup>7</sup>

चिन्तन की प्रक्रिया रहस्यवादी कवि से सदैव रहती है संसार के प्रति विरक्ति, साधकों का अभीष्ट रहा है। कवयित्री ने स्वयं घोषित किया था सखे यह है, माया का देश। अपनी दार्शनिक विचारधारा में महादेवी जी अत्यन्त मधुर भावों की अभिव्यंजना में विशेष रूप से सफल हुई हैं। महादेवी जी की साधना भावों की साधना है। वे अव्यक्त के साथ, साध्य अथवा परम् तत्त्व से एकाकार होना चाहती है। अपने सम्पूर्ण निजत्व को विलय कर देना चाहती है-“मिलन मंदिर में उठा दूँ, जो

सुमुख से सजल गुंठन । में मिंटू प्रिय में मिटा ज्यों तत्त्व सिकता में सलिलकण । सजनि मधुर निजत्व दे/कैसे मिलूं अभिमानि में ।”<sup>8</sup>

महादेवी जी ने अपने व्यष्टि को समष्टि से एकीकृत किया है। उनकी कविता में व्यापक सत्य की अभिव्यक्ति मात्र लौकिक धरातल पर स्थिर नहीं है वरन् पारलौकिक भूमि पर अवस्थित है। उनका सुख-दुख समष्टि से ही सम्बद्ध है। महादेवी का सम्पूर्ण काव्य आध्यात्मिक चेतना से परिपूर्ण ‘अलौकिक साधना की सुन्दर सिद्धि’ के रूप में ही रमणीय है। आधुनिक युग के हिन्दी कवियों में रहस्यानुभूति की यथार्थता, व्यापकता एवं गम्भीरता तथा उसकी अभिव्यक्ति की कलात्मकता की दृष्टि से महादेवी अनुपम एवं अतुल्य है। यह अलंकारिक कथन नहीं अपितु भली-भाँति सोच-समझ कर दिया गया निर्णय है।

अन्त में भौतिकतावादियों से मेरा इतना ही निवेदन है कि वे अध्यात्म की सत्ता में विश्वास करें या न करें किन्तु इतना तो स्वीकार करें कि आज भी ऐसे व्यक्तियों का अस्तित्व सम्भव है जो कि अध्यात्म में पूर्ण विश्वास करते हों और यदि हम विश्वास कि सम्भावना को स्वीकार करते हैं तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि यह विश्वास जब बुद्धि के स्तर से उतर

कर हृदय की निधि बन जाता है तो उसका रागात्मक अनुभूति में परिणत हो जाना भी संभव है और साथ ही उस अनुभूति का सामान्य शब्दावली या काव्यात्मक शैली में व्यक्त हो जाना भी स्वाभाविक है। ऐसी स्थिति में अध्यात्मवादी और रहस्यवादी अनुभूतियों का काव्य में अभिव्यक्त होना स्वाभाविक कहा जाता है।

#### संदर्भ-

1. गणपति चन्द्रगुप्त, महादेवी : नया मूल्यांकन, पृ. 174
2. यामा की भूमिका, पृ. 5
3. सन्धिनी, पृ. 77
4. डॉ. हुकुम चंद राजपाल, महादेवी का काव्य सौन्दर्य, पृ. 49
5. वही, पृ. 50-51
6. असीम मधुपुरी, महादेवी साहित्य का अभिनव मूल्यांकन, पृ. 85
7. वही, पृ. 86
8. वही, पृ. 87

असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, दूबलधन, झज्जर, हरियाणा

#### पृ. 57 का शेष भाग.....

कारण स्वीकारा है। माया का भ्रम-जाल ही पार्थक्य के भाव का कारण होता है किन्तु माया का दर्पण टूटते ही आत्मा, प्रियतम को पहिचानने में समर्थ हो जाती है।

अन्त में महादेवी ने काव्य में दार्शनिक तत्त्वों का समावेश अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। उनके काव्य में किसी एक सिद्धान्त या वाद की प्रमुखता नहीं मिलती अपितु समस्त दार्शनिक विचार धाराओं का समन्वित स्वरूप दृष्टिगत होता है। प्राचीन संस्कृति और ग्रन्थों का प्रभाव उनके काव्य में स्पष्ट रूप से झलकता है।

#### संदर्भ-

1. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, महादेवी : नया मूल्यांकन, पृ. 44

2. डॉ. शोभनाथ यादव, कवयित्री महादेवी वर्मा, पृ. 135
3. महादेवी : नया मूल्यांकन, पृ. 44
4. महादेवी, यामा, रश्मि, पृ. 96
5. डॉ. भोलानाथ, आधुनिक हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ. 485
6. गंगा प्रसाद पाण्डेय, महीयसी महादेवी, पृ. 121
7. महादेवी, यामा, रश्मि, पृ. 106
8. महादेवी, नीहार, पृ. 84-85

शोधार्थी हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

---

## विरक्ति और वैराग्य के विरोध के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य

निर्मला देवी

मानववाद चूँकि एक समष्टि सापेक्ष प्रगतिशील चिन्तन है, इसलिए वह किसी प्रकार की एकान्त साधना अथवा एकान्तिक जीवन को उचित नहीं मानता। उसका आधर पूर्णतः सामाजिक है अतः वह किसी प्रकार के वैराग्य और विरक्तिमूलक को मान्यता नहीं देता। यद्यपि वैराग्य का सम्बन्ध धर्म से है और मानववादी विचारक धर्म को किसी रूढ़ अर्थ में स्वीकार नहीं करता। अतः मानववाद वैराग्य का विरोध कर मनुष्य के सामाजिक जीवन को ही महत्त्वपूर्ण मानता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी यद्यपि धर्म का विरोध नहीं किया तथापि वे धर्म का व्यापक अर्थों में ही विवेचित करते हैं। यही कारण है कि वे किसी भी ऐसी रूढ़ धार्मिक विचारधारा का विरोध करते हैं जो मनुष्य के एकान्तिक जीवन का पक्ष लेती हो। धर्म के नाम पर तप के लिए समाज से पलायित होना द्विवेदी जी की दृष्टि में कोई अर्थ नहीं रखता। उनके अनुसार समाज में तपस्या की कसौटी है।<sup>1</sup> लेखक का यह दृष्टिकोण उनके उपन्यासों में विशेष रूप से स्पष्ट होता है। चारुचन्द्र लेख और अनामदास का पोथा में विशेष तौर पर उपन्यासकार ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि समाज से विमुख वैराग्य कोई अर्थ नहीं रखता। द्विवेदी जी में एक गहरी सामाजिक दृष्टि है, जो व्यक्ति को अलग इयत्ता के रूप में नहीं समाज के अभिन्न अंग के रूप में ग्रहण करती है। अतः वे व्यवस्थाओं को रूपायित करने वाले तत्त्वों की छानबीन करते हैं और उनके अन्तः सूत्रों में एकान्तमकता स्थापित करने का प्रयास करते हैं।<sup>2</sup> द्विवेदी जी की एक विशेषता यह है कि वे जिस प्रकार धर्म को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं उसी प्रकार वैराग्य को भी नवीन और सार्थक परिभाषा प्रदान करते हैं। 'भारतीय संस्कृति का स्वरूप' निबंध में वे वैराग्य को नवीन अर्थ प्रदान करते हुए लिखते हैं- "जब सत् और असत् का ज्ञान हो जाये तो असत् का त्याग करने की जो वृत्ति है, उसको वैराग्य कहते हैं। परन्तु यह वैराग्य यदि एक दिन में ही उदित होकर विलीन हो जाये तो उसे श्मशान वैराग्य कहते हैं। श्मशान में जाकर प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि जिन्दगी का कोई ठिकाना

नहीं है, सुख भोग, अनित्य और नश्वर है, परन्तु यह वैराग्य क्षणिक और अस्थायी होता है। निरन्तर अभ्यास के बाद मनुष्य मनोवृत्तियों को असत् आचरण की ओर जाने से रोक पाता है।<sup>3</sup> वैराग्य को सामाजिक जीवन से विमुख मानने के बजाय मनुष्य की मनोवृत्तियों से जोड़ना लेखक की एक मौलिक स्थापना है, जो उनके प्रगतिशील मानववादी चिन्तनक्रम की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। द्विवेदी जी ने अपनी इस स्थापना को सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में भी स्पष्ट किया है। बाणभट्ट की आत्मकथा में लेखक ने महादेव के द्वारा कामदेव को भस्म किए जाने के प्रसंग को मनोवृत्ति द्वारा असत् को नष्ट करने के प्रतीक के रूप में विवेचित करके अपनी इस स्थापना की पुष्टि की है। सुचरिता के माध्यम से लेखक ने यह प्रश्न उठाया है कि वैराग्य क्या इतनी बड़ी चीज़ है कि प्रेम के देवता को उसकी नयनाग्नि में भस्म कराके कवि गौरव अनुभव करे।<sup>4</sup> तदुपरान्त वे इसका खण्डन करते हुए बाणभट्ट के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि कालीदास ने प्रेम के देवता को वैराग्य की नयनाग्नि से भस्म नहीं कराया है, बल्कि उसे तपस्या के भीतर से सौन्दर्य के हाथों प्रतिष्ठित कराया है। पार्वती की तपस्या से सच्चे प्रेम के देवता अर्विभूत हुए थे। जो भस्म हुआ, वह आहार निद्रा के समान जड़ शरीर का विकार्य धर्म मात्र था। वह दुर्वार था, परन्तु देवता नहीं था।<sup>5</sup>

विश्विक्तमूलक चिन्तन के संदर्भ में द्विवेदी जी की यह मौलिक स्थापना विशेष तौर पर अनामदास का पोथा में परिलक्षित होती है। पूरी कथा में रैक्व चिन्तन के उत्तरोत्तर विकास की ओर उन्मुख होता है और अन्ततः वह वैराग्य का त्याग कर ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। उपन्यासकार ने रैक्व का यह परिवर्तन एकाएक न करके चिन्तन प्रक्रिया के माध्यम से अत्यन्त तार्किक ढंग से किया है और यही कारण है कि उपन्यास की यह स्थापना अनुभवों पर आधारित जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध है न कि किसी प्रकार की सैद्धान्तिक विचार पर। रैक्व द्वारा एकान्त में की जा रही तपस्या को उपन्यासकार ने वास्तविक जीवन के परिप्रेक्ष्य में धीरे-धीरे निरर्थक सिद्ध



किया है और सामाजिक आधारभूमि पर उसकी सार्थकता प्रामाणित की है .... “एकान्त का तप बड़ा तप नहीं है .... संसार में कितना कष्ट है, रोग है, शोक है, दरिद्रता है, कुसंस्कार है। लोग दुःख से व्याकुल हैं। उनमें जाना चाहिए। उनके दुःख को भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो यही वास्तविक तप है।<sup>6</sup> इस प्रकार लेखक ने समाज में मनुष्य की सक्रीय भूमिका को ही महत्त्वपूर्ण मानते हुए अपनी मानववादी चिन्तन में यह स्थापना की है। स्नेहलता शरेशचन्द्र का भी यही मानना है कि अनामदास का पोथा उपनिषदकालीन तत्त्व चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में बड़ी सूक्ष्मता से निष्क्रिय चिन्तन एवं निष्प्रयोजक एकान्तिक साधना के बदले क्रियाशील सेवावृत्ति को प्रतिष्ठित कर जीवन के सत्य का उद्घाटन करता है।<sup>7</sup>

समाज में मनुष्य का यह क्रियाशील सेवावृत्ति ही वास्तव में लेखक की दृष्टि में सच्ची तपस्या है। तपस्या को मानवीय गुणों के विकास का माध्यम मानते हुए द्विवेदी जी ने एक अन्य स्थान पर यह स्थापित किया है कि तपस्या इसलिए बड़ी है कि उससे मनुष्य में उन मानवोचित गुणों का विकास होता है, जिसे सच्ची मनुष्यता कहते हैं। नहीं तो केवल हाथ उठाकर बारह वर्ष खड़े रहने का या पम्चाग्नि तापने का अपने आप में कोई विशेष महत्त्व नहीं है।<sup>8</sup> स्पष्ट है कि लेखक ने तपस्या को एकान्त साधना के साथ न जोड़कर समाज सेवा के अर्थ में मान्यता दी है। इसी प्रकार द्विवेदी जी समाधि को भी किसी प्रकार के विशिक्तमूलक चिन्तन से न जोड़कर उसे मनोवृत्तियों के संयम से सम्बद्ध करते हैं। उनके अनुसार अन्तः प्रकृति के असंयत फिकाव को नियंत्रित करने के उल्लास का नाम समाधि है।<sup>9</sup> कथा के अन्त में रैक्व का समाधि और तपस्या को छोड़ गाड़ी को चलाकर समाज सेवा की ओर उन्मुख होना वैराग्य की निरर्थकता को प्रमाणित करता है। रैक्व स्वयं यह स्वीकार करता है कि वह जो गाड़ी के नीचे बैठकर तप कर रहा था, वह

झूठा तप था। सही तपस्या गाड़ी चलाकर की जा सकती है।<sup>10</sup>

इस प्रकार लेखक का मानववादी चिन्तन वैराग्य और विरक्तिमूलक चिन्तन को लोक कल्याण में किसी प्रकार भी सहायक नहीं समझता और समाज से विमुख होने के कारण मनुष्य के विकास में भी उसकी कोई भूमिका नहीं मानता। एकान्तिक साधना के स्थान पर द्विवेदी जी ने मनुष्य की सामाजिक सक्रियता के महत्त्व को स्थापित किया है।

#### संदर्भ-

1. चौबे, कृपा शंकर (सं.) हजारी प्रसाद द्विवेदी चिन्तन और व्यक्तित्व, (लेख) सावित्री श्रीवास्तव, युगीन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में द्विवेदी के उपन्यास, बलिया, हजारी प्रसाद द्विवेदी स्मारक समिति संस्करण-1994, पृ. 48
2. स्नेहलता शरेशचन्द्र, उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्या पुस्तक मंदिर सदन, सं. 1996, पृ. 228
3. मुकन्दी लाल द्विवेदी (सं.) हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली भाग-9, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1981, पृ. 210
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाणभट्ट की आत्मकथा, दिल्ली राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., तीसरा संस्करण, 1988, पृ. 200
5. वही, पृ. 200
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अनामदास का पोथा, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण-1990, पृ. 60
7. स्नेहलता शरेशचन्द्र, उपन्यासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्या पुस्तक मंदिर सदन, सं. 1996, पृ. 289
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-9, पृ. 230-231
9. वही, पृ. 35
10. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अनामदास का पोथा, वही, पृ. 91

*अरुणा आसफ अली सरकारी कॉलेज, कालका, हरियाणा*

---

## नज़ीर अकबराबादी की धार्मिक चिंतनधारा

जाविद अली

धर्म का गान मनुष्य आदिकाल से ही करता आ रहा है और आज भी धर्म की अपनी अलग प्रासंगिकता है। धर्म एक मनुष्य को ही सम्बोधित नहीं करता है बल्कि सम्पूर्ण समाज को अपनी परिधि में बाँधे रखता है। धर्म तक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्तियों को एक ओर प्रेम, भाईचारा और समता का पाठ पढ़ाती है तथा दूसरी ओर आपसी मतभेद को भी बढ़ावा देती है। प्रत्येक मनुष्य कहीं न कहीं किसी न किसी धर्म से जुड़ा रहता है और वह जिस धर्म में अपनी आस्था रखता है, उसी धर्म में वह अपनी मुक्ति प्राप्ति की इच्छा भी रखता है। इतना ही नहीं प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ समझता है और दूसरों के धर्म को तुच्छ दृष्टि से देखता है। इस कारण भी समाज में धार्मिक उन्माद फैलता है जो किसी एक व्यक्ति या किसी एक समाज को ही प्रभावित नहीं करता है अपितु सम्पूर्ण देश को पतन के मार्ग पर अग्रसर कर देता है। भारतीय इतिहास साक्षी है कि जब-जब देश को धार्मिक परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा है, तब-तब देश में अनेक सूफी-सन्तों का जन्म हुआ है। उन सूफी-सन्तों ने समाज में रहने वाले सभी धर्म-जाति के लोगों को अनेक उपदेश भी दिये हैं कि हमें धर्म के नाम पर आपसी मतभेद नहीं रखना चाहिए, जाति-पाँति के नाम पर नहीं लड़ना चाहिए। कौन छोटा है कौन बड़ा है? यह बातें हमें आपसी संघर्ष सिखाती हैं और यह हमारे अज्ञान के कारण ही होता है।

सत्य तो यह है कि 'ईश्वर' धर्म-जाति के नाम पर नहीं बँटा है। धर्म तो ईश्वर से बहुत नीचे की सत्ता है। ईश्वर की दृष्टि में न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है, सब एक समान है। सभी धर्मात्मियों का मानना यही है कि ईश्वर एक है इतना ही नहीं बल्कि सभी धार्मिक ग्रंथों वेद, पुराण, गीता, कुरआन आदि में एक ईश्वरीय सत्ता की प्रामाणिकता का सन्देश मिलता है। कवि नज़ीर अकबराबादी उर्दू के भी हैं और हिन्दी के भी हैं। नज़ीर कवि होने के साथ-साथ एक सामाजिक सरोकार अर्थात् समाज सुधारक के रूप में जाने जाते हैं। उनका धार्मिक चिन्तन सूफी-चिन्तन की आधारशिला है। नज़ीर का काल

मुग़लशासन का पतन युग भी कहा जा सकता है। उनके समय भी देश अनेक धार्मिक विषमताओं से घिरा हुआ था। उन धार्मिक विषमताओं के कारण समाज में अनेक अत्याचार होने लगे थे। जिसका प्रभाव सभी धर्म-जाति के लोगों पर ही नहीं बल्कि अनेक धर्मात्मियों पर भी पड़ा। समाज में रहने वाले अनेक हिन्दू-मुस्लिम लोग अपने घरों से बेघर हो गये थे। इसी समाज में कवि नज़ीर भी अपना जीवन यापन कर रहे थे। उनके धार्मिक-चिन्तन पर सूफी-चिन्तन की अमिट छाप देखने को मिलती है। नज़ीर को भी अनेक धार्मिक परिस्थितियों से गुज़रना पड़ा। परन्तु वह अपने धार्मिक चिन्तन से पथभ्रष्ट नहीं हुए।

उनका व्यक्तित्व सामासिक व्यक्तित्व है। जिसमें हिन्दुत्व और मुस्लिम दोनों के संस्कारों की यथार्थ तस्वीर देखने को मिलती है, जो अनेकता में एकता रखने वाले भारत की गौरवता का प्रतीक है। “नज़ीर का जन्म 1735 ई. में बसंत पंचमी के दिन दिल्ली में हुआ। दिल्ली पर अहमदशाह अब्दाली के तीन आक्रमण होने कारण शहर के लोगों का रहना मुश्किल हो गया था, तो नज़ीर अपनी माँ और नानी के साथ 22-23 वर्ष की उम्र में दिल्ली से अकबराबाद जाकर दम लिया।” “नज़ीर अरबी, फ़ारसी का शब्द है जिसका अर्थ सदृश्य, समान, मिस्त, उदाहरण और दृष्टांत, मिसाल आदि लिया जाता है।”<sup>2</sup> मध्यकाल के साहित्य पर दृष्टि डाले तो उस समय साहित्य में उदाहरण और दृष्टांत के रूप में अनेक कवियों द्वारा अपने और अपने काव्य को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति रही है। इतना ही नहीं सन्तों के काव्य पर दृष्टि डालें तो साखी नामक काव्य रूप उनकी अनुभूति का प्रमाण तत्त्व रहा है। नज़ीर अपने साहित्य और सामाजिक अनुभूतियों के रूप में दिखलाई देते हैं। इसलिए उनका काव्य यथार्थ से कहीं भी हटता हुआ नहीं दिखाई देता है। यह सब नज़ीर की साक्षात् अनुभूति का ही प्रमाण है। नज़ीर का अधिकांश जीवन आगरा में ही व्यतीत हुआ। आगरा का प्राचीन नाम अकबराबाद है जो इसे बसाने वाले सम्राट अकबर के नाम पर शाहजहाँ ने रखा था।

जिस प्रकार आगरा सम्राट अकबर की उदार नीति के लिए जाना जाता है उसी प्रकार नज़ीर का साहित्य अपनी उदार नीति का प्राण तत्त्व है। नज़ीर ने आगरा के जन-जीवन में घुल-मिलकर अपने साहित्य का सर्जन किया है जो उनके साहित्य का केन्द्र बनकर सम्पूर्ण भारतीय जन-जीवन को प्रदर्शित करता है। कवि नज़ीर आगरा शहर के प्रेम में भाव-विभोर होकर अनेक कविताएँ लिख डालते हैं। इतना ही नहीं वह आगरा शहर के प्रति इतने उत्साहित हो जाते हैं कि वह स्वयं को भी पूर्ण रूप से आगरा का बताने की ओर संकेत करते हुए कहते हैं-“आशिक कहो, असरी कहो, आगरे का है। मुल्ला कहो, दबीर कहो, आगरे का है। मुफ्लिस कहो, फ़कीर कहो, आगरे का है। शायर कहो, नज़ीर कहो, आगरे का है।”<sup>3</sup>

नज़ीर जन्म से मुसलमान थे, परन्तु वह भारतीय संस्कृति में पले-बढ़े थे इसीलिए उनके आन्तरिक संस्कार न हिन्दू के हैं न मुस्लिम के हैं। वह तो एक शुद्ध भारतीय आत्मा प्राप्त सूफ़ी-सन्त थे। उनकी दृष्टि में सभी समान थे।

वह जाति-पाँति के नाम पर किसी को छोटा-बड़ा नहीं मानते थे केवल कर्म के आधार पर ही वह व्यक्ति को श्रेष्ठता प्रदान करते थे। कवि नज़ीर भली-भाँति जानते थे कि भारत एक बहुधर्मी देश है इसमें सभी धर्म-जाति के लोग निवास करते हैं। किसी एक धर्म-जाति को श्रेष्ठ मानकर समानता और भाईचारे का उपदेश देना असम्भव है; समन्वय दृष्टि को अपनाकर ही हम सबको मानवता व समता का ज्ञान दे सकते हैं और इसी समन्वय की भावना से हमारा देश उन्नति व प्रगति के मार्ग तय कर सकता है। संसार में कोई एक ऐसा धर्म नहीं हुआ जो सभी धर्मों को कुचलकर सबको एक छत के नीचे ला सके। इसके लिए पूर्व से ही किये गये अगणित प्रयास असफल रहे हैं और यह आज भी सम्भव नहीं है नज़ीर लोक के कवि रहे हैं। उनकी अनुभूति अपने युग से बहुत आगे की है। इसी अनमोल अनुभूति और सूफ़ी-चिन्तन के कारण वह सभी धर्म-जाति के लोगों को एक ही उपदेश देते हैं कि हमें आपसी मतभेद नहीं रखना चाहिए, धर्म-जाति के नाम पर होने वाले अन्तर्द्वन्द्व को खत्म कर देना चाहिए। यह सब बातें हमें पतन की ओर ले जाती हैं न कि उन्नति की ओर। इसलिए नज़ीर किसी धर्म-जाति के बन्धन में बँधकर नहीं रहे, वह उन सबसे ऊपर उठकर मानवता को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते हैं। वह भावना से न मुसलमान है, न हिन्दू, न सिख, न इसाई, वह हिन्दू भी है, मुसलमान भी है, सिख भी है। अतः हम कह सकते हैं कि उनकी भावना में निहित धर्म मानव आस्था का धर्म है और उस मानव आस्था में विश्व की सभी जातियों की आस्थाएँ और विश्वास समा सकते हैं। उनका धर्म किसी विशेष नाम की

सीमा में नहीं बँधा है। वह तो ससीम से शुरू होकर असीम की यात्रा पर निकल पड़ता है जो विश्व की आस्थाओं को अपनी आस्था बना लेता है। उनकी धार्मिक दृष्टि सम्पूर्ण मानवता को सामने रखकर मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। करुणा, परोपकार, विश्व मैत्री, प्रवृत्ति, निवृत्ति का समन्वय, सदाचार सन्तोष, सदाजीवन आदि नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा जो मानव मात्र के सन्दर्भ में की। इसी धार्मिक दृष्टि का विशेष परिणाम है। इस सम्बन्ध में डॉ. मुहम्मद अहसन कहते हैं कि-“संसार के सभी धर्मों का और मानवता का सम्बन्ध चोली और दामन का नहीं, गुण और गुणी का है। जिस प्रकार गुणी से गुण और गुण से गुणी अलग नहीं हो सकता है उसी प्रकार धर्म से मानवता और मानवता से धर्म को पृथक् नहीं किया जा सकता। सभी धर्म मानवता की शिक्षा देते हैं।”<sup>4</sup> नज़ीर ने मानव जीवन को उन्नति प्राप्त के लिए अनेकानेक उपदेश दिये हैं। उनका साहित्य हमें यह प्रेरणा देता है कि व्यक्ति ही उन्नति के साथ-साथ समाज का विकास भी होता है, इसलिए उन्होंने मानवता का ऐसा अमर गान गाया है कि वह धर्म के नाम होने वाले झगड़ों को और आपसी मतभेदों का व्यर्थ बताते हुए अपनी कविता ‘आखिर नहीं अल्लाह का एक नाम रहेगा’ में कहते हैं-“झगड़ा न करे मिल्लतो मज़हब का कोई यां। जिस राह में जो आन पड़े खुश रहे हर आं। जुन्नार गले या कि बगल बीच हो कुरआं। आशिक तो कलन्दर हैं न हिन्दू न मुस्लमां।”<sup>5</sup>

नज़ीर का काव्य भावात्मक एकता के लिए एक उदाहरण के रूप जाना जाता है उन्होंने बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के काव्य-रचना की है। वह सभी धर्मों के महान् पुरुषों से गहरी आस्था और श्रद्धा रखते थे और उसकी प्रशंसा भी उसी रूप में करते थे। वह जहाँ एक तरफ हिन्दू-धर्म के अनेक देवी-देवताओं पर कविताएँ लिखते हैं-‘गणेश जी की स्तुति’, ‘कृष्ण कन्हैया की तारीफ़’, ‘तारीफ़ भैरो की’, ‘दुर्गाजी के दर्शन’ आदि। इसके अतिरिक्त दूसरी ओर इस्लाम-धर्म से सम्बन्धित ‘खुदा की तारीफ़’, ‘दरसनाए पैग़म्बरे खुदा’, ‘नात हज़रत मुहम्मद’ और मन्क़बत हज़रत अली आदि कविताएँ लिखी हैं। इतना ही नहीं नज़ीर के काव्य में धार्मिक भावना कूट-कूट भरी हुई है क्योंकि वह जिस आस्था से हज़रत मुहम्मद साहब को दोनों जहाँ का मालिक मानते हुए अपनी कविता ‘नात हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह’ में अपनी आस्था को व्यक्त करते हैं-‘हैं जो यह दोनों जहाँ की आफ़रीनिश के चमन। जिसमें क्या कुछ अयां है सनए ख़ालिक के जतन। बाइसे खल्क उनके हो तुम या हबीबे जुलमनन। और एक मतला पदूँ मैं युमन से जिसके सुखन।’<sup>6</sup>

उसी प्रकार नज़ीर अपनी कविता ‘बालपन बाँसुरी बजैया

का' में श्रीकृष्ण को भगवान का अवतार मानते हुए अपनी श्रद्धा को प्रकट करते हुए कहते हैं-‘उनको तो बालपन से न था काम कुछ ज़रा। संसार की जो रीति थी उसको रखा बजा। मालिक थे वह तो आपी उन्हें बालपन से क्या। वां बालपन, जवानी, बुढ़ापा, सब एक था।’<sup>77</sup>

नज़ीर सभी धर्म-जाति के बँधनों से मुक्त थे। वह मानवता के दूत बनकर समाज में आये और अपनी कविताओं में उन्होंने प्रेम और मानवता का गीत भी गाया है। इस सम्बन्ध में डॉ. अब्दुल अलीम का विचार उल्लेखनीय है-‘भारतीय समाज में विभिन्न धर्म और सम्प्रदायों के लोग रहते हैं। बिना धार्मिक समन्वय के भारतीय समाज स्वस्थ और उन्नतशील दिशाओं की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। समाज चेता कवि नज़ीर अकबराबादी ने भारतीय समाज की इस नाड़ी को पहचान लिया था।’<sup>78</sup> उनके धार्मिक चिन्तन की विशालता और महानता का अनुमान इससे लगाया जा सकता कि उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों के त्यौहारों और पर्वों को भी समान श्रद्धा व सम्मान दिया है। उन्होंने ईद, शब्बरात, होली, दिवाली और रक्षाबन्धन पर भी खुलकर कविताएँ की हैं जिससे हमें समता ज्ञान प्राप्त होता है। ईद के वर्णन में जहाँ एक ओर ईद की खुशी में वह सबकी खुशी को अपनी खुशी मानते हुए दिखाई देते हैं। ईद का वर्णन करते हुए वह कहते हैं-‘काज़ल हिना गुज़ब मिसी-ओ-पानकी धड़ी। पिशवाज़े सुर्ख सौसनी, लाही की फूलझड़ी। कुरती कभी दिखा कभी अंगिया कसी कड़ी। कह ‘ईद-ईद’ लूटे है दिल को घड़ी-घड़ी। ऐसी शब-बरात न बकरीद की खुशी। जैसी हर एक दिल में हैं इस ईद खुशी।’<sup>79</sup>

नज़ीर ने परम्परा से हटकर काव्य-लिखा है और उनकी नई कविताओं का सीधा संबंध लोक-जीवन से है। कवि की यह विशेषता रही है कि वह भारत देश के किसी भी छोर से किसी घटना या समाज के किसी तथ्य को उठाकर अगर उसे अपने काव्य में जगह देता है तो निश्चित रूप से वह आँखों के सामने वर्णित होने लगता है। नज़ीर जब होली का वर्णन करते हैं तो होली के रंग में रंगी हुई हर चीज़ को देखकर आनंदित होकर कह उठते हैं कि-‘यह वक्त खुशी का है मत काम रखो रम से। ले रंग गुल ऐ जां! और नाज़ के खमचमसे। हँस-हँस के बहम लिपटें इस ऐश के आलम से। हम ‘छोड़’ कहें तुम से तुम ‘छोड़’ कहो हम से। होली में यही धूमें लगती हैं बहुत भलियाँ।’<sup>10</sup>

कवि नज़ीर की धार्मिक दृष्टि का निर्माण भी उनकी सामासिक सांस्कृतिक की ही मूल कड़ी है। उनके काव्य में सन्दर्भ ईश्वर के स्वरूप, उसके अस्तित्व, महिमा, ईश्वर की भक्ति, स्तुतियों और धार्मिक विश्वास के रूप में मिलते हैं। जो वास्तव में सामासिक संस्कृति की परिधि में अभिव्यक्ति हुई हैं।

‘‘उस शुष्क और उज़ाड़ संगम पर आकर नज़ीर ने अज्ञान भी दी और शंख भी फूँका। तसबीह भी ली और जनेऊँ भी पहना। मुहर्रम में रोए तो होली में भडुवे भी बने। रमज़ान में रोज़े रखे और सलूनो पर राखी बाँधने की मचल पड़े। शब्बरात पर महताबियाँ छोड़ी तो दिवाली पर दीप सजाए। नबी, रसूल, वली, पीर पैगम्बर के लिए जी भरकर लिखा, तो कृष्ण, महादेव, नरसी, भैरों और नानक पर भी श्रद्धांजलि चढ़ाई। गुलो-बुलबुल पर लिखा तो आम और कोयल को पहले याद रखा। पर्दे के साथ बस्नती साड़ी भी याद रही और तो और गर्मी, बरसात और सर्दी पर भी लिखा। बच्चों के लिए रीछ का बच्चा, कौआ और हिरन, गिलहरी का बच्चा, तरबूज पतंगबाज़ी, बुलबुलों की लड़ाई, ककड़ी, तैराकी, तिल के लड्डू पर लिखने बैठे तो बच्चे बन गये। हर एक बालक गली-कूचों में गाता फिरता है। जवानो और बुड़्डों को नसीहत देने बैठे तो लोग वज्द में आ गये। माणों कुरआन, हदीस, वैद, गीता उपनिषद, पुराण सब घोलकर पी-जाने वाला कोई सिद्ध पुरुष बोल रहा है।’<sup>11</sup>

नज़ीर धर्म को ही परम शक्ति बताते हैं जो व्यक्ति को अपनी असमर्थता का बोध कराकर आस्थामय आयाम देता हुआ परम सत्ता की शक्ति को स्वीकृति कराता है।

#### सन्दर्भ-

1. दीवाने नज़ीर : (सम्पादक) मिर्ज़ा फ़रहतुल्लाह बेग, अंजुमन तरक्की उर्दू-ए-हिन्द, 1942 पृ. 4
2. उर्दू-हिन्दी शब्द कोष: संकलनकर्ता, मुहम्मद मुस्तफा ख़ाँ मद्दाह, उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ 1989 पृ. 332
3. नज़ीर ग्रंथावली : (सम्पादक) डॉ. नज़ीर मुहम्मद, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ, 1992 पृ. 492
4. निर्गुण संत कवियों का मानवतावाद: डॉ. मुहम्मद अहसन, उत्कर्ष प्रकाशन, अलीगढ़, जून 1984 पृ. 58
5. नज़ीर ग्रंथावली, (सं.) डॉ. नज़ीर मुहम्मद, पृ. 180
6. वही, पृ. 23
7. वही, पृ. 561
8. नज़ीर अकबराबादी और उनकी विचारधारा, डॉ. अब्दुल अलीम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। 1992, पृ. 185
9. नज़ीर अकबराबादी और उनकी शायरी, (सं.) सरस्वती सरन ‘कैफ’ राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली 2006, पृ. 33
10. वही, पृ. 35
11. उर्दू-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (सं.) सैयद एहतिशाम हुसैन, अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू-हिन्द, अलीगढ़, 1954, पृ. 130-131

# मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों की व्यंग्यात्मकता

संगम वर्मा

व्यंग्य कह सकने के लिए आसान विधा है लेकिन इसकी दुर्गमता को वही जान सकता है जिसने इसका मार्ग पकड़ा हो। सामान्य बोलचाल की भाषा में हम दूसरे को खिझाने के लिए व्यंग्य का प्रयोग करते हैं और यह भी तथ्य है कि यह गुण किसी विरले के ही हाथ में होता है। जब सामान्य बोलचाल में यह उपलब्धियाँ किसी-किसी के हाथ में होती हैं। इसलिए साहित्य में तो इसका अनुपात और भी कम हो जाता है। मनोहर श्याम जोशी इसी कम अनुपात के हिस्से वाले लेखक हैं। उन्होंने अपनी कृतियों में सूक्ष्म व्यंग्य को स्थूल व्यंग्य की अपेक्षा अधिक स्थान दिया है। उनका यह सूक्ष्म व्यंग्य पात्रों के संवादों, एक-दूसरे पर छींटाकशी, घटनाओं का विडम्बनापूर्ण चित्रण और स्वयं लेखक की टिप्पणियों में परिलक्षित होता है। लेखक पात्रों, घटनाओं का विश्लेषण साथ-साथ करता चलता है। जोशी के लेखन की यह विशिष्ट उपलब्धि है।

जोशी के उपन्यासों में व्यंग्य ढूँढ़ने से पूर्व यह जान लेना उचित होगा कि व्यंग्य है क्या? व्यंग्य या तो वक्रोक्ति है या फिर प्रतीक। हाँ, इतना अवश्य है कि ये प्रतीक अथवा वक्रोक्तियाँ सामान्तर होती हैं। जैसे अगर यह कहा जाए कि अमुक नेता की जीभ लम्बी है तो यहाँ प्रतीक के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि नेता जी बहुत लालची हैं। इसी तरह यदि कोई कहे, अब आ गए वृहस्पति अब निदान मिल जाएगा तो वक्रोक्ति के माध्यम से किसी मूर्ख पर कटाक्ष किया गया है। व्यंग्य के सरोकार कई हो सकते हैं- सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक साथ ही मानवीय विद्रूपताओं पर भी व्यंग्य कसा जाता है।

विद्रूपताओं पर व्यंग्य का उदाहरण जोशी का 'हरिया हरक्यूलीज़ की हैरानी' नामक उपन्यास है। लेखक शुरू में ही अपनी बिरादरी पर व्यंग्य कसता है- "हरिहर दत्त तिवारी उर्फ हरिया हरक्यूलीज़ ईसा संवत् 1969 के (हमारा अपना विक्रमी संवत् क्या चल रहा है, यह याद रखना हमारी बिरादरी तब भी भूलने लगी थी) उस कथाख्यात दिन से पहले कभी हैरान नहीं हुआ था, इसलिए उसकी हैरानी हमारी बिरादरी के लिए क्रमशः

एक लम्बी और पेचदार कहानी बनती चली गयी।"<sup>1</sup>

यहाँ इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि यह व्यंग्य ही वस्तुतः इस उपन्यास का आधार है। बिरादरी यह भूलकर कि हरिहर मूढ़ है और इस कारण भदेस से उसे विरक्ति नहीं। इस बात पर हैरान होना शुरू कर देती है कि हरिया हैरान क्यों हुआ? इसी बात को आगे बढ़ाता हुआ लेखक लिखता है- "ऐसा नहीं कि हरिया के पास इससे पहले हैरान-परेशान होने का कभी कोई कारण न रहा हो। बल्कि सच तो यह है कि उस अधेड़, अकाल वृद्ध, गंजे और गमखोर चिरकुँवारे हरिया के लिए हैरान होने के एक नहीं, हजारों कारण रहे थे। अपने पिता के पाँच पुत्रों में से केवल वही जीवित बचा था और उस पर अपने बड़े भाइयों के बाल-बच्चों की परवरिश की ही नहीं, अपने तिरासी वर्षीय रूग्ण और अंधे पिता की तीमारदारी का भी पूरा भार पड़ा था। फिर भी उसे कभी हैरान-परेशान होता नहीं देखा गया। उसके परेशान न होने को कुछ लोग उसके परमू मूढ़ होने का लक्षण मानते रहे थे। अगर हरिया का उपनाम 'हरक्यूलीज़' न चल चुका होता तो लोगबाग उसे हरिया 'मदुआ' यानी हरिया बुद्ध के नाम से मशहूर कर देते। उसके पिता राय साहब गिरवाणदत्त तिवारी तो उसे 'मदुआ' ही पुकारा करते थे।"<sup>2</sup>

बात वस्तुतः इतनी है कि हरिया समझता है कि गू एक फेंक सकने वाली चीज़ है। लेकिन जब वह गूमालिंग नाम सुनता है तो इसका अर्थ केवल संज्ञा नहीं लेता बल्कि गू ही लेता है यानी समझता है अपने नाम गूमालिंग के जैसा ही गू से बना हुआ कोई शहर होगा। चूँकि वह मूढ़ है अतः यह समझने में असमर्थ है कि यह केवल एक नाम है। इसी बात पर वो हैरान होता है।

इसी तरह सिफ़ारिशी लोगों के ऊपर भी इस उपन्यास में एक जगह व्यंग्य है। कैसे लोग आजकल सिफ़ारिश के बल पर तरक्की करते हैं। इस पर हरिया के पिता का एक संवाद है जो सिफ़ारिश की परम्परा पर फ़ोकस करता है- "ज़रा सोशल बन भाऊ। मेरा नाम लेकर बड़े लोगों से मिलेगा-जुलेगा तो तेरी

तरक्की के रास्ते खुलेंगे।”<sup>3</sup>

इसी तरह हरिया के नाम के साथ जो ‘हरक्यूलीज़’ लगाया गया है वह भी व्यंग्यपूर्ण ही है। हरक्यूलीज़ यूनान का एक महाबली था जिसे प्रायश्चित स्वरूप तमाम कठिन परीक्षाएँ देनी पड़ी थीं। इसी के समानांतर ऐसी परिस्थितियों से गुजरना पड़ा जो औरों को कठिन लगती थी लेकिन हरिया को नहीं क्योंकि वह मूढ़ था। पिता के मल निष्कासन मार्ग में हाथ डालकर मल निकालना आम व्यक्ति के लिए भदेस है, घृणापूर्ण है लेकिन वह इसे सहज ही कर लेता है। लेखक ने हरिया के नाम के साथ ‘हरक्यूलीज़’ विशेषण लगाकर अलंकारिक भाषा का पुट दिया है।

इसी प्रकार प्रौढ़ स्त्री में यौन जीवन की कैसी लालसा होती है। इसका उदाहरण हेमूली बोज्यू के संवाद में मिलता है। “बोज्यू ने मुस्कराकर उसकी बाँह छोड़ दी और कहा, “लेकिन टट्टी-पेसाब, बीमारी-हीमारी की बात मत करना, हाँ। वैशी ही बात करना जैशी देवर को बोज्यू शे करनी चाहिए। तुम्हारे बाबू तो, मैंने शुनी, ऐशी बालों में बड़े तेज थे। तुम्हारी ईजा बताती थी कभी-कभी।”<sup>4</sup>

जोशी ने जिन विद्रूपताओं/त्रासदियों को अपने व्यंग्य-बाणों से बंधा है वे आत्म-बीती भी हैं। उपन्यास में ‘टा-टा प्रोफेसर’ की कहानी में यह प्रोफेसर वस्तुतः कामुक है लेकिन जोशी के व्यंग्य का स्पर्श पाकर कॉमिक बन गया है। इस उपन्यास में भी जोशी जी ने सिफारिश पाने और चाहने वाले लोगों की टाँग खींची है। उपन्यास में जोशी जी लिखते हैं-“जूनियर क्लर्क इस बीच यह अनुमान लगा चुका था कि ‘संगम’ संपादक इलाचन्द्र जोशी मेरे भाई-वाई होंगे। उसने अनुरोध किया कि मैं अपने लिफाफे में उसकी भी कुछ कविताएँ अपने सिफारिशी पत्र के साथ रखूँ।”<sup>5</sup>

स्पष्ट है जोशी जी भीगे जूते से मारते हैं। इसीलिए उन्होंने स्थूल व्यंग्य का सहारा न लेकर सूक्ष्म व्यंग्य की शैली अपनाई है। इसी के साथ जातिवाद जैसी नितान्त बूढ़ी समस्या पर भी करारे प्रहार किए हैं और भाषा ऐसी रखी है कि व्यंग्य में पैनापन भी हो और हास्यप्रद भी हो। “...इस पर उसने साहित्य में जातिवाद के महत्त्व पर प्रकाश भी डाला है और कहा कि मैं तो इसीलिए उपनाम से लिखता हूँ कि बामण, ठाकुर, कायथ सब में खप जाऊँ। तुम मेरी रचना भेजोगे तो इलाचन्द्र ज्यू मुझे भी बामण ही समझ लेंगे। जैसे धोती तो एक जैसी ही है न तुम्हारी-उनकी।”<sup>6</sup>

यहाँ जोशी ने छोटे-बड़े ब्राह्मण को छोटी-बड़ी धोती से सम्बोधित किया है। यह संबोधन पैना तो है ही, हास्यास्पद भी है।

उपन्यास में टा-टा प्रोफेसर प्रौढ़ावस्था को पहुँच चुके पुरुष, उनके यहाँ भी दमित भावनाओं और यौन-कुण्ठाओं की झलक देखने को मिलती है। उपन्यास में जूनियर क्लर्क का संवाद देखें-“माट सैप, आपने कभी ख्याल किया कि प्रोफेसर सैप हम मर्दों से तो ब्लडीफूल वाली इंग्लिस में डॉट-डपट ही करते हैं, लेकिन औरतों को सामने घुघुती की तरह रून-झुन बोलते हैं। कभी आपने इसे प्राइमरी स्कूल की उस चीनी टीचर कलावती येन से कानाफूसी और इशारेबाजी करते देखा है?”<sup>7</sup>

नवोदित कलाकारों में जो एक तरह का अहंकार और ना-समझी होती है उसे जोशी जी भली-भाँति जानते थे। इसी उपन्यास में जोशी जी एक जगह पर स्टेटमेंट देते हैं- “उन दिनों लेखकीय अहंकार कुछ ऐसा था कि दूसरे के सुझाये हुए विषय पर कहानी लिखने की बात मैंने गौर करने काबिल नहीं समझी। वैसे भी उन दिनों मेरी ‘आदिम’ और ‘प्रगतिशील’ दोनों को मिलाकर कुछ ऐसा लिख मारने की इच्छा थी, जिसमें डी. एच. लारेन्स में अपटन सिनक्लयेर, अज्ञेय में प्रेमचन्द घुल-मिल जाएं।”<sup>8</sup>

जोशी जी कौए की हँस वाली चाल से भी भली-भाँति परिचित थे और जानते थे कि हरेक आदमी जो नहीं है वो होना चाहता है और कभी-कभी अपनी कोशिशों से वो तरक्की तो प्राप्त नहीं करता लेकिन व्यंग्य का केन्द्र जरूर बन जाता है। टा-टा प्रोफेसर एक ऐसा कॉमिक व्यक्तित्व है। वह स्वयं को चोटी का इंग्लिश विद्वान समझता है। जोशी ने बड़े ही सधे हाथों से उनकी इस चाल का चित्र खींचा है-“प्रोफेसर टा-टा न केवल अंग्रेजों की पोशाक पहनते थे, बल्कि उन्हें अंग्रेजी की भाषा से भी बहुत प्रेम था। वह अपनी एक जेबी-नोटबुक में अंग्रेजी के ऐसे तमाम शब्द दर्ज कर लिया करते थे जो उन्होंने पहली बार सुने हों। इसलिए लोगबाग मजा लेने के वास्ते उन्हें उलटे-सीधे शब्द गढ़कर बता देते थे। लिहाजा वह उस नये शब्द को तभी मान्यता देते जब अपनी डिक्शनरी में उसे पा जाते। अंग्रेजी भाषा ही नहीं, अंग्रेजी के तौर-तरीकों के भी वह कायल थे। इसलिए वह चाहते थे कि जूनियर लोग, जाहिर है कि सुनौलीधार स्कूल के प्रिंसिपल और प्रबन्धक को छोड़ बाकी सभी उनके जूनियर थे, उन्हें ‘सर’ कहकर पुकारें। स्वयं वह जूनियरों के नाम के आगे ‘मिस्टर’ जोड़ना कभी न भूलते। जहाँ तक हो सके वह स्थानिक लोगों की तरह एक-दूसरे का अभिवादन करते समय नमस्कार कहना टाल जाते थे और समयानुकूल अंग्रेजी अभिवादन का प्रयोग करते थे- गुड मॉर्निंग, गुड ईवनिंग वगैरह। अगर नमस्कार कहना ही पड़ जाय और गाँवों के बुजुर्गों से कहना ही पड़ जाता था, तो वह नमस्कार में ‘आ’ की मात्रा को बहुत ही लम्बा खींचकर अपने को औरों से

अलग सिद्ध कर दिखाते थे।<sup>9</sup>

इसी को आगे बढ़ाते हुए उनकी इसी मानसिकता का परिचय देते हुए जोशी जी ने अपनी कला का बखूबी चित्र प्रस्तुत किया है-“प्रोफेसर टा-टा को इस बात का सचमुच बहुत गर्व था कि मैं सुनौलीधार के लोगों से कुछ अलग और ऊँचा हूँ। अपने अनूठेपन को रेखांकित करने की उनकी जिद उन्हें लोगों के लिए कुछ और हास्यास्पद बना देती थी। वह बार-बार लाहौर का जिक्र कुछ इस तरह करते थे मानो लाहौर, लंदन हो और लाहौर में तीन वर्ष बिता चुकने के कारण उन्हें सुनौलीधार में वह दर्जा दिया जाना ज़रूरी हो, जो किसी विलायत लौटता, को दिया जाता है। इस लाहौर-प्रवास के कारण वह अपने को सुनौलीधार गाँव के ही नहीं, समस्त कुमाऊँ के कुँए के मेढ़कों से अलग और ऊपर समझते थे।”<sup>10</sup>

इसी तरह जोशी का ‘हमज़ाद’ उपन्यास मनुष्य की बुराइयों पर करारी चोट करता है। हमज़ाद का अर्थ है-साथ ही पैदा हुआ। यह उस शैतान के लिए प्रयोग किया जाता है जो, मान्यता के अनुसार, आदमी के साथ पैदा होता है और तमाम ज़िन्दगी उसको बुराइयों की ओर धकेलता रहता है।

“तख़तराम अहमदपुरी की यह कहानी शुरू से आख़िर तक एक जाली कहानी है जिसमें लेखक खुद के साथ दगा करता है, एक ऐसे झूठ का पहाड़ बनाते हुए जिसकी खोदती हुई एक अदद नकली चूहिया अपने आप को उसमें छिपा खजाना साबित करने की कोशिश में लगी हुई है। एक बार टी.के. की धिनौनी तस्वीर पूरी होते ही वह चूहिया फरेम के बाहर आ जाती है और कैमरा टी.के. की धिनौनी मौत का वीडियो टेप तैयार करते हुए तख़तराम की ओर घुमा देती है। गुमनाम, गरीब और नाकामयाब शहर तख़तराम धरेजा, ज़िन्दगी से लेकर मौत तक एक अक्स है, मशहूर अमीर और कामयाब टी.के. नारकियानी का, जिसकी बेहया कारगुजारियों में वह अपने लिज़लिज़ेपन को उलटता रहता है।”<sup>11</sup>

उपन्यास में जयदेव का एक संवाद है जो आदमी की Money Mindness और Money Oriented ज़िन्दगी का खाका अक्षरशः खींच देता है-“मेरा-जैसा धन्धे वाला तो पैसा उसी को देता है जिससे उसको कोई लालच हो या डर। हम लोग तो दान-पुण्य भी करता है तो भगवान का डर से। आप मेरा न कोई फ़ायदा करा सकता है, न कुछ बिगाड़ सकता है, तो मैं आपको पैसा क्यों देवे, बोलो?”<sup>12</sup>

लोग धार्मिक किताबों को पढ़ते तो बहुत हैं लेकिन उन पर अम्ल करना किसी और की ज़िम्मेदारी समझते हैं। हमज़ाद का पात्र कहता है-“यार, तू बेकार के पचड़ों में बहुत पड़ता है अरे, किस मज़हब में यह लिखा है कि अपने फ़ायदे की फ़िक्र

मत करो, दूसरे के फ़ायदे की फ़िक्र करो? और अगर लिखा भी हो तो उसे मानने में कहाँ की अक्लमन्दी है?”<sup>13</sup>

‘कसप’ क व्यंग्यमय प्रेम-गाथा है। इसका पात्र है डी. डी. जो कोरा बुद्धिजीवी है। जिस पर उसे प्रेम भी हो गया है जो उसे हास्यास्पद बना देता है। उसके सभी कार्य उपन्यास में हास्य का पुट लिये हुए हैं। एक बानगी देखें-“नायक को अपनी हाजिरजवाबी पर नाज है। वह शौच करके उठता है यह जवाब देते हुए कि ‘तेरी तरियों के मच्छड़ मार रिया हूँ।’ बहुत विलम्ब से यह खोज करता है कि टट्टी बनवाने वाले के लिए यह कल्पना असम्भव थी कि इसे छह फुट या उससे ज़्यादा कद वाला कोई इस्तेमाल करेगा तो नायक अब कुर्ता टोड़ी के नीचे दबाये, इजारबन्द के छोर सम्हाले उठेगा है, रसोई के बाहर रिश्तेदारों का मजमा है और बब्बन चिल्ला रहा है, ‘आये उजबक, सुबु-सुबु दरसन क्यों करा रिया है?’ और हाँ, “कोई हँस रही है, सोच-सोचकर, क्रमशः बढ़ते हुए आवेग से। यह हँसी रसोई और बँगले को जोड़ने वाले गलियारे से फूट रही है।”<sup>14</sup>

आधुनिक प्रेम पर व्यंग्य करते हुए अपनी भाषा दक्षता का भी परिचय साथ में देता हुआ ‘कसप’ उपन्यास के एक पात्र के निम्न शब्द देखें-“नहीं, मित्रता हो सकती है, शारीरिक आकर्षण हो सकता है, मानसिकता व्यावसायिक साझेदारी हो सकती है और हद से हद अन्तरंगता हो सकती है। प्यार कुछ नहीं होता, एक पक्ष सर्वथा मूढ़ हो तो बात अलग है।”<sup>15</sup>

‘कुरू-कुरू स्वाहा’ एक नई तरह का उपन्यास है। जिसमें शिल्प-विधान, फ़िल्म-मेकिंग की तरह है। “पहले शॉट से लेकर फाइनल फ़्रीज तथा यह एक कॉमेडी है, लेकिन इसी के एक पात्र के शब्दों में-“एइसा कॉमेडी कि दर्शक लोग जानेगा, केतना हास्यास्पद है त्रास अउर केतना त्रासद है हास्य।”<sup>16</sup>

उपन्यास का नायक है जोशी, जो इस उपन्यास के लेखक मनोहर श्याम जोशी के अनुसार सर्वथा कल्पित पात्र है। यह नायक तिमज़िला है। पहली मंज़िल में बसा है मनोहर श्रद्धालु-भावुक किशोर। दूसरी मंज़िल में ‘जोशी जी’ नामक इण्टेलेक्चुअल और तीसरी में दुनियादार श्रद्धालु ‘भैं’ जो इस कथा को सुना रहा है। नायिका है पहुँचेली-एक अनाम और अबूझ पहेली, जो इस तिमज़िला नायक को धराशायी करने के लिए ही अवतरित हुई है। कुल मिलाकर बम्बइया शैली की भाषा का चमत्कार रूप इस उपन्यास में देखने को मिलता है। यही इस उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है।

**शेष पृ. 74 पर....**

# मेरी भव बाधा हरो में: परम्परा और स्त्री विमर्श

माला कुमारी

परम्परा का अर्थ है - रीति-रिवाजों, नियमों आदि का बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जारी रहना।

इतिहास में यदि हम झाँके तो पता चलता है कि स्त्रियाँ आदि काल से ही पारम्परिक नियमों के जंजीर में जकड़ी हुई हैं। हाँ, वैदिक युग की विदूषि मैत्रीय, लोपा, गर्मा आदि के नाम चिर स्मरणीय हैं परन्तु नारी के इस रूप को कितनी स्त्रियाँ जानती हैं? सच तो यह है कि आज भी अधिकांश भारतीय महिलाएं पौराणिक परंपराओं तथा आदर्शों का यथोचित पालन करती हैं। वह अपने आपको सदा पुरुष के अधिकार तथा बंधन में रहना स्वीकार करती है एवं अनेक कष्ट सहते हुए, पत्नी धर्म का पालन करती है। अपने पुरुष के गौरव को बनाये रखने का प्रयास करती है। ये क्षमा, त्याग और दयाभाव से ओत-पोत रहती है।

‘मेरी भव बाधा हरो’ में बिहारी की पत्नी सुशीला एक परम्परावादी स्त्री है वह पति के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझती है। वह कहती है- “तुम्हें जिसमें सुख होता है, वही मेरा सुख है। मैं जानती हूँ कि कविता करना बहुत ही कठिन काम है। मैं तुम्हारे रास्ते में अड़चन बनकर नहीं रहना चाहती तुम वही करो जिसमें तुम्हें सुख मिलना हो।”<sup>1</sup> इस तरह वह बिहारी को कविता लिखने के लिए प्रेरित करती है।

परन्तु बिहारी के राज दरबारी कवि बन जाने पर धन की वर्षा होने लगती है। बिहारी राज दरबार के भोग विलास से अपने आप को रोक नहीं पाते हैं और उसमें डूबते चले जाते हैं। तब सुशीला को बिहारी के मन में अपने लिए पहले-सा सौहार्द प्रतीत नहीं होता है। वह सोचती है इसका कारण ?

‘याद आया, चंद्रकला मेरी सौत!

वह एकांत में रोई।

पर मन को धैर्य दिया सब अमीर रण्डियाँ रखते हैं बिहारी में ही क्या दोष है, नहीं उसे ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए कोई सुनेगा तो उसी पर हँसेगा।”<sup>2</sup>

सुशीला पुरुष स्वभाव समझकर इसका विरोध नहीं करती है। डॉ. रांगेय राघव कहते हैं कि -‘कैसे परम्परावादी

औरतें अपनी दया, सहनशीलता, समर्पणशीलता, शालीनता, पितृक नैतिकता को आत्मसात् करने के कारण पुरुषों की हिंसा, दमन, उत्पीड़न, अन्याय को न केवल मजबूती प्रदान कर रही है वहीं उनकी सहनशीलता, अन्तर्मुखता, खामोशी बनकर दयनीय, दरिद्र, अबला स्थिति के लिए दोषी भी है। डॉ. रांगेय राघव स्त्री की चुप्पी को घोषण का सबसे बड़ा कारण बताते हैं।”<sup>3</sup> सुशीला पितृसत्तात्मक नियमों का पालन करने वाली नारियों की तरह एक समर्पणशील नारी है जो पति बिहारी के हर बात को अपना कर्तव्य समझकर उसका अनुपालन करती है। बिहारी सुशीला से कहते हैं -“वह वेश्या है सुशीला! तुम कुल नारी हो, घर की शोभा हो! सुंदर बाँदिया तो रखनी ही पड़ती है। जानती हूँ पुरुष को सबकुछ चाहिये, मैं मना नहीं करती। ऐसा कौन नहीं करता। स्त्री को तो यह आदत होनी चाहिए कि यह सब देख सके।”<sup>4</sup> भारतीय नारी को कुलदेवी, गृहलक्ष्मी आदि कहकर संबोधित करने के पीछे पितृक समाज की साजिश है जिसके आड़ में स्त्रियों को वास्तव में अधिकारहीन, अस्तित्वहीन, एक निरीह प्राणी बनाया जाता है।

लोहिया के स्त्री विमर्श में स्त्री जीवन से संबंधित समस्याओं पर गंभीरता से विचार किया गया है। उन्होंने हिंदुस्तान में स्त्री की स्थिति और छवि की लिखित और मौखिक, सांस्कृतिक, सामाजिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में जांच पड़ताल की है। जहाँ स्त्री के व्यक्तित्व को दबाकर एकांगी बनाने का जाना बूझा उद्दम हुआ है। परम्परावादियों के द्वारा स्त्री के महिमा मंडन के खोखले पर को लोहिया पहचानते हैं। ऐसा लगता है उन्हें परम्परा की सैकड़ों रस्सियों और बेड़ियों में बांध दिया गया है। उनमें शक्ति ही नहीं, चाहे वे जिस किसी वर्ग या प्रकार की नारियाँ हो। भारत की नारी सचमुच बंधी हुई है नाम के लिए दुर्गा और भगवती है जिसका एक स्वरूप काली है लेकिन दरअसल एक शक्तिहीन पदार्थ है।<sup>5</sup>

स्त्री-विमर्श इन परम्परावादी नारियों की चुप्पी का कारण पारम्परिक नियमों को ठहराता है ‘जो स्त्री के समक्ष भौतिक और धार्मिक भय उत्पन्न करता है। जिससे वह पितृसत्ता के



नियमों को स्वेच्छा से स्वीकार कर लें।<sup>6</sup>

जबकि स्त्री पर पुरुष अधिपत्य के पक्ष में स्वेच्छा से स्वीकार के आमफहम राय को मिल जोरदार खण्डन करते हैं। मिल कहते हैं कि- “जबसे महिलाओं में शिक्षा का प्रचार हुआ है और वे लेखन के क्षेत्र में आई हैं तब से ही उन्होंने बड़ी तादाद में अपनी वर्तमान सामाजिक स्थिति के खिलाफ विरोध दर्ज किया है। यह स्वाभाविक भी है, ज्ञान के प्रचार के साथ ही महिलाओं में ‘इच्छा’ जैसी किसी चीज़ ने जन्म लिया और उसकी रक्षा करने उसे बचाने के लिए महिलायें प्रस्तुत हुई इसके पहले तो स्त्री की ‘इच्छा’ और ‘मन’ जैसी किसी चीज़ का अस्तित्व ही नहीं था। वह सिर्फ देह थी इसके ज्यादा कोई अन्य भूमिका उसके लिए अपवाद ही था।”<sup>7</sup> पितृक समाज में स्त्री को शुरू से ही समर्पण और त्याग का पाठ पढ़ाया जाता है। सुशीला अपने अधिकार से कभी कुछ नहीं मांगती उसमें एक परम्परावादी नारी की तरह त्यागशीलता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। बिहारी कहते हैं-“तुमने कभी कुछ नहीं मांगा, मांगती तो तुम्हें अच्छा नहीं लगता, मुझे मांगना नहीं आता क्या करूं धीरे से सुशीला ने कहा जो तुम्हारा है सो मेरा है, फिर मांगू भी तो क्या?”<sup>8</sup> स्त्रियों के अपने अधिकार के प्रति जागरूक न होने का मूल कारण यह है कि “आज तक अधिकारों पर कब्जा पुरुषों का ही था एवं आज भी है और तब तक रहेगा जब तक स्त्रियां अपने अधिकारों के लिए जागरूक नहीं हो जाती। अब स्त्रियों को यह सोचना विचारना होगा कि उनके हिस्से में केवल कर्तव्य ही क्यों आया है, अधिकार क्यों नहीं? जब स्त्रियां इस प्रकार के प्रश्नों के प्रति तर्कशील होकर विचार करेंगी, न्याय के लिए सोचेंगी, तभी उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में कोई परिवर्तन संभव हो सकेगा। कर्तव्यों की रूपरेखा एकपक्षीय ही क्यों? वहाँ अधिकार की बात क्यों नहीं होती? स्त्री कर्तव्यनिष्ठ, कर्तव्यपरायण हो और पुरुष अधिकारों का स्वामी, कि स्त्री को कितने अधिकार देने हैं, कितने नहीं? यह विरोधाभास क्यों? कर्तव्य का भार ढोते-ढोते स्त्रियां अपने अधिकारों से वंचित कर दी जाती हैं। उनका जीवन नीरस, रसहीन बनकर रह जाता है। अत्यधिक सहनशीलता ने उन्हें संज्ञाहीन बना दिया है। बदले में पुरुष समाज उन अस्तित्वहीन स्त्रियों को आदर्श नारी, महान् कर्तव्य निष्ठ स्त्री, देवी की अमूर्त छद्म संज्ञा देकर उसके जीवन का अंत कर देता है।”<sup>9</sup>

सुशीला अपने पति के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती और अपने पति से बिना पूछे कोई काम नहीं करती। एक बात में वो चौकस रहती जब मायके वाले कुछ मांगने आते तब वह कहती घर के मालिक से पूछ लो।<sup>10</sup> इस तरह वह अपने पति की इच्छा के बिना किसी को कुछ नहीं देती। सच पूछिये तो महिलायें चाहे

गाँव घर की हो, चाहे नगर घर की, चाहे पढ़ी-लिखी हो, चाहे अनपढ़, चाहे धनी हो, चाहे गरीब उन्हें अर्थ के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता। निर्णय न ले पाने की अधिकार हीनता बहुत बड़ी पराधीनता है। शहरों के धनी मनी घरों में लड़कियों और बहुओं को पैसे तो मिलते हैं किंतु खाने-पीने शौक शृंगार आदि के लिए। उस पैसे को .... इच्छा के विपरीत किसी ....काम में नहीं लगा सकती।<sup>11</sup> धन पर पितृक नियमानुसार पुरुषों का ही अधिकार रहा है।

जीवन की अंतिम समय में जब सुशीला बीमार पड़ती है उसका दुख देखकर बिहारी को अपनी भूल याद आती है। वो पश्चताप से आँसू बहाने लगता है तब उसे सांत्वना देते हुए वह कहती है -तुम सदा मेरे थे। मैं जानती थी तुम वैभव में फिर गये थे जो सब करते है तुमने भी किया। वैभव में सब यही करते हैं। तुम पुरुष हो तुम्हें दोष किसका।<sup>12</sup>

इस तरह सुशीला परम्परावादी विचारों वाली नारी है। जिसे अपने पति से कोई शिकायत नहीं थी। वह सुख-दुख को झेलते हुए जीवनपर्यंत तृप्त रहती है। परन्तु नारी का गौरव इसी में है कि वह अपनी अस्मिता के अवमानना स्वीकार न करे उन गलत व्यवहारों व मान्यताओं का विरोध करें जिनके नाम पर उन्हें पराधीन पराश्रित बनाया जाता है। वह अपनी वाणी हीन, स्वार्थहीन मनोवृत्ति से बाहर निकलकर ही संतुलित वेग को फैला पायेगी। नारी के सत्य का अर्थ ही है उसकी अस्मिता, उसका अस्तित्व, उसका व्यक्तित्व जहाँ एक ओर ....की ताकत उसमें है। इन्हीं के कारण वह सत्य सुंदर व कल्याणकारी भी है पर उसके शिव रूप की खोज करना व उस पर आस्था रखने से ही उसके स्वत्व को स्वीकारा जा सकता है।<sup>13</sup> सुशीला बिहारी से पूर्णतः संतुष्ट रहती है ठीक इसी प्रकार जैसे परम्परावादी स्त्री अपने अधिकारहीनता, अर्थहीनता को अपनी नियती समझ कर उसी में खुश रहती है जबकि पितृसत्तात्मक समाज की राजनीति के तहत स्त्री को गर्भ से लेकर बूढ़ी होने तक प्रत्येक संबंधों के द्वारा छला ही जाता है परंतु यदि वो घर की चार दीवारी में पुरुष द्वारा बनाई सीमाओं तथा प्राप्त साधनों में खूटे से बंधकर प्रसन्न है तो उसके जीवन पर प्रश्न चिह्न कौन लगा सकता है अपने होने पर प्रश्न लगाती है, बेड़िया तोड़ना चाहती है, देवी भी नहीं बनना चाहती, दासी भी नहीं तभी सब संघर्ष व विमर्श का कोई अर्थ है।<sup>14</sup>

स्त्री-विमर्श में नारी स्वतंत्रता की मांग हो रही है वो अपनी अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार के लिए आंदोलन कर रही है। अब परम्परागत संस्कारों से जकड़ी भारतीय नारी अपने चारों तरफ घिरे मकड़ी के जाले से बाहर निकल आई है। शिक्षा या साहित्य क्षेत्र तक ही वह सीमित नहीं रही जीवन के हर क्षेत्र

तथा ज्ञान के हर विषय में वह उतर आई है। आज भी भारतीय नारी का ये असाधारण और अद्वितीय पहलू है। तस्वीर है पर सामान्य नारी उसका क्या? नयी संस्कृति, नये अवसर, नई जागृति, नई पहचान के बावजूद वह त्रिशंकु मात्र बन जाती है मन और विचार से वह महत्वाकांक्षी है, कुछ प्राप्त करना चाहती है अपने को सिद्ध करना चाहती है पर परिवार और समाज के दबाव उसके परम्परागत संस्कार उसके बढ़ते कदमों को ठिठका देते हैं वह विरोधाभास जो पौराणिक काल से चला आ रहा है किसी न किसी रूप में आज भी समाप्त कहीं हो पाया है? क्या भारतीय नारी को अपना अधिकार, अपनी पहचान, अपनी अस्मिता पूरी तरह मिल पाई है? प्रश्न ही है उत्तर नहीं?<sup>15</sup> आज स्त्री विमर्श के द्वारा इन्हीं प्रश्नों के उत्तर को ढूँढ़ने का प्रयास किया जा रहा है।

#### संदर्भ-

1. डॉ. एस. पद्मप्रिया, मेरी भव बाधा हरो, सुलोचना रांगेय राघव, पृ. 48
2. वही, पृ. 66

3. डॉ. गीता पुजारी, साहित्यिक डॉ. रांगेय राघव, पृ. 49
4. सुलोचना रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृ. 54
5. महाश्वेता देवी, स्त्री मुक्ति का सपना, पृ. 200
6. नारी एक सफर, दिनेश नन्दिनी डालमियां, संतोष गोयल, पृ. 223
7. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, पृ. 22
8. मेरी भव बाधा हरो, पृ. 119
9. राकेश कुमार, नारीवादी विमर्श, पृ. 174
10. मेरी भव बाधा हरो, पृ. 88
11. वर्तमान साहित्य, मार्च 2011, पृ. 39
12. मेरी भव बाधा हरो, पृ. 126
13. नारी एक सफर, पृ. 103
14. वही
15. वही, पृ. 120

हिन्दी विभाग, पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय, पुदुच्चेरी

#### पृ. 71 का शेष भाग....

अस्तु, मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में व्यंग्य बिल्कुल स्पॉट है एकदम स्पॉट जो सीधे मुँह बात करता है और बिल्कुल खरी। इसलिए भीगे जूते की मारक क्षमता जैसा व्यंग्य है उनके सभी उपन्यासों में दीख पड़ता है। यही विचित्रता उन्हें दूसरे उपन्यासकारों से विच्छिन्न करती है।

#### सन्दर्भ-

1. जोशी, मनोहर श्याम, हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2008, पृ. 5
2. वही, पृ. 6
3. वही, पृ. 8
4. वही, पृ. 21
5. जोशी, मनोहर श्याम, टा-टा प्रोफेसर-किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 9
6. वही, पृ. 10
7. वही, पृ. 14

8. वही, पृ. 15
9. वही, पृ. 16
10. वही, पृ. 16
11. जोशी, मनोहर श्याम, हमजाद, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2008, पृ. 5
12. वही, पृ. 8
13. वही, पृ. 33
14. जोशी, मनोहर श्याम, कसप, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथी आवृत्ति 2004, पृ. 15-16
15. वही, पृ. 115
16. जोशी, मनोहर श्याम, कुरू-कुरू स्वाहा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 14

शोधार्थी हिन्दी विभाग, एस.सी.डी. गवर्नमेंट कॉलेज, लुधियाना।

---

## नरेन्द्र मोहन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

श्रीमती वनदेवी दु. हुच्चणवर

नरेन्द्र मोहन जी आधुनिक समकालीन हिन्दी साहित्य क्षेत्र में एक अच्छे कवि, लेखक, नाटककार, निबंधकार समीक्षक एवं आलोचक के रूप में अपनी ख्याति हासिल की है। वे इस युग के उन गिने-चुने साहित्यकारों में एक हैं जो वह साहित्य सृजना को जीवन जीने के पर्याय के रूप में नहीं बल्कि गहरी निष्ठा से ज़िंदगी जीने की एक व्यापक अर्थ में ग्रहण किया था। नरेन्द्र जी हिन्दी साहित्यिक विभिन्न विधाओं में अपना योगदान दिया है और उनके योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। व्यक्तित्व भी प्रभावशाली रहा है। नरेन्द्र जी 20 वीं सदी के छठे दशक से अपना लेखन कार्य प्रारंभ किये। आरंभ में वे हिन्दी में छोटी-छोटी कविताएँ और लेख लिखना शुरू किया। इस तरह उनकी साहित्यिक साधना आगे चलकर बड़ी-बड़ी कविताएँ, नाटक, कथा साहित्य, आलोचना, निबंध आदि विधाओं में विकसित हुआ। इसके अतिरिक्त वे अपनी मातृभाषा पंजाबी तथा अंग्रेज़ी में भी साहित्य लिखे हैं।

नरेन्द्र मोहन जी आधुनिक हिन्दी साहित्य क्षेत्र में एक प्रसिद्ध नाटककार के रूप में श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। साथ ही वे एक अच्छे कवि, निबंधकार, आलोचक, समीक्षक भी सिद्ध हुए हैं। आधुनिक समकालीन हिन्दी साहित्य क्षेत्र में नरेन्द्र जी एक से ऐसा निबंधकार है जो समकालीन सभी विषयों को अपने निबंध रचनाओं को आधार बनाया है। उनके साहित्य में तत्कालीन, सामाजिक एवं राजनैतिक विभिन्न स्थिति-गतियों का यथार्थ चित्रण व्यक्त होता है। उनके निबन्ध रचनाएँ आलोचनात्मक तथा समीक्षात्मक रहे हैं। उनके निबंध हो या अन्य विधाएँ। उनमें आज के राजनैतिक व्यवस्था पर भी व्यंग्य प्रकट होता है। यह भी प्रकट किया है कि आज का समाज किस दौर में गुज़र रहा है। वे कहते हैं उसमें नया बदलाव लाना भी आवश्यक है। नरेन्द्र जी अपने निबंध साहित्य के द्वारा आज के नयी पीढ़ी के विचारों में परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर देते हैं। आधुनिक साहित्यकार होकर नरेन्द्र जी सिर्फ एक ही विधा में नहीं बल्कि लगभग सारे विधाओं अपना कमाल दिखाये हैं। इस तरह उनका अपना ही हैसियत और स्वायत्तता रही है।

जिसे वे अपनी निरंतर साधना एवं परिश्रम द्वारा पाये है। वे एक आधुनिक समकालीन जाने-माने एक निबंधकार भी होने से पहले अपनी चार लम्बी कविताएँ एवं सात नाटकों की रचनाओं के द्वारा अपने आप को एक अच्छे निबंधकार के रूप को भी साबित किया है। उनका 'रचना का सच' नामक निबंध संग्रह एक विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण पुस्तक रही है। जिसमें वे आलोचनात्मक कथात्मक, समीक्षात्मक आदि शैलियों में अपने निबंध रचनाओं को प्रस्तुत किये हैं। स्वाधीनता बाद के पचास वर्षों में हुए विभिन्न परिवर्तनों को नरेन्द्र जी अच्छी तरह से महसूस की है। इसकी विचारों को बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किए हैं। उनके निबंध रचनाएँ आज के समाज में एक नयी बदलाव और नयी दृष्टिकोण लाने को प्रेरित भी करती हैं। लेखक जी के आंतरिक विचार तथा मनोसंवेदनाएँ पुराने विषयों के साथ जुड़कर एक नयी आशा को जागृत कराते हैं। इतना ही नहीं आलोचना के संकट के इन दिनों में उनके निबंध साहित्य एक बहुस्तरीय खोज रही है।

समकालीन हिन्दी साहित्य क्षेत्र में अपने विभिन्न साहित्यिक विधाओं, रचनाओं के द्वारा अपना ही एक अलग, विशिष्ट पहचान दी है। उनके साहित्यिक सृजना भारतीय वर्तमान स्थिति-गतियों के विभिन्न विषयों पर आधारित है। जैसे अपने ही विशिष्ट आंतरिक संवेदनाएँ, भारतीय नाटक, रंगमंच, नाट्यालोचन जैसे विषय भारतीय परिप्रेक्ष्य में रंगमंच, वर्तमान जीवन स्थिति-गति पर व्यंग्य आदि महत्वपूर्ण विचार प्रकट होते हैं। उनके साहित्य में स्वाधीनता बाद के पचास वर्षों के अपने अनुभवों का यथार्थ चित्रण मिलता है। नरेन्द्र जी लम्बी कविता, नाटक, निबंध, रचना तथा आलोचना आदि विधाओं के सृजना के द्वारा हमें एक अद्भुत, विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण जानकारीयों प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही हमारा ज्ञान के चैतन्य का भी विस्तार होता है।

नरेन्द्र मोहन की समग्र साहित्य 'नरेन्द्र मोहन रचनावली' नाम से आठ खंडों में प्रकाशित है। उनकी सभी रचनावलियों, कला प्रेमियों तथा साहित्य जिज्ञासुओं के लिए एक बहुत

अमूल्य निधि हो सकती है। उनके समग्र साहित्यिक रचनाओं से हमें नये विचार तथा विशिष्ट जानकारियाँ प्राप्त हो सकता है। नरेन्द्र जी के समग्र साहित्य से हमें पता चलता है कि लिखना उनके लिए उद्वेलनकारी अद्भुत अनुभव है।

### **नरेन्द्र मोहन जी का जन्म, शिक्षा एवं पारिवारिक जीवन**

नरेन्द्र मोहन जी का जन्म 30 जुलाई 1935 लाहौर में हुआ। उनके जन्म के समय रात के बारह बजे जब लाहौर में फसाद हो जाने के कारण कर्फ्यू लगा हुआ था। नरेन्द्र जी की माता का नाम विद्यावती और पिता का नाम रूप लाल शर्मा था। लेखक जी के पिता भी साहित्य एवं कलाओं के अध्यापक थे। नरेन्द्र जी उनकी पाँचवीं संतान थे। वे बचपन में शांत, सरल स्वभाव के थे और किसी की हेकड़ी सहन नहीं करते थे। जब वे पाँच वर्ष के थे तब उनका छोटा भाई वीरेन्द्र मोहन का जन्म हुआ। सन् 1942 में नरेन्द्र जी के बड़े भाई मदन मोहन घर छोड़कर बंबई में भर्ती हो गया। इससे पूरा परिवार बुरी तरह दुःखी हुए। इसका असर नरेन्द्र जी पर भी पड़ा तब वे दस वर्ष के थे। इसके बाद सन् 1945 को उनके बड़े भाई जोगिन्द्र मोहन की मृत्यु हो गयी। इसका बुरा तथा गहरा असर नरेन्द्र जी पर पड़ा। इस तरह के घटनाएँ उन्हें झकजोर देकर आगे भविष्य में एक अच्छे साहित्यकार, आलोचक बनने का करण बने। खेल, तमाशा के साथ उनके प्राथमिक शिक्षा पूरी हुई।

नरेन्द्र जी सन् 1946-47 को 'लाहौर कैंटनमेंट हाईस्कूल' में प्रौढ़ शिक्षा के प्रवेश किया। तब देश विभाजन के कारण सन् 1947 को अपने माता-पिता के साथ लाहौर छोड़कर पालमपुर जाना पड़ा। आगे वे सन् 1952 के 'अंबाला' में मैट्रिक परीक्षा प्राइवेट तौर पर पास करके जी.एम. एस. कॉलेज में दाखिल हुए। इन्हीं दिनों वे छोटी-छोटी कविताएँ, साहित्यिक लेख निलखा शुरू की। आगे सन् 1956 को पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. (हिन्दी) प्रथम स्थान में उत्तीर्ण हुए। चंडीगढ़ से एम.ए. हिन्दी की उपाधि सन् 1956 में प्राप्त की। इसी समय उनकी छोटे-छोटे कविताएँ, लेख आदि कॉलेज तथा स्थानीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। आगे सन् 1962 को पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से डॉ. रमेश कुन्तल जी के निर्देशन में 'आधुनिक हिन्दी कविता' इस विषय पर पीएच-डी. शोध कार्य प्रारम्भ की उनके पीएच-डी. की मौखिक परीक्षा के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक तथा श्रेष्ठ साहित्यकार डॉ. नरेन्द्र जी परीक्षक बनकर आये। इस तरह एक श्रेष्ठ साहित्यकार तथा आलोचक के प्रभाव से उनके साहित्य सृजना आगे निरंतर रही।

नरेन्द्र जी अपने पूरी पढ़ाई के बाद लुधियाना, जालन्धर

कॉलेजों में लेक्चर पद के लिए नियुक्त हुए। बाद में सन् 1967 जून 10 को श्री गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली में अध्यापक सेवा कार्य शुरू किए। यही दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के रीडर का पद ग्रहण सन् 1977 में किए। इस तरह निरंतर अपना सृजन कार्य करते हुए देश के विभिन्न भागों आयोजित संगोष्ठियों में अपने महत्त्वपूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किए हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय में निरंतर सेवा कार्य करते हुए सन् 2000 को अपने सरकारी सेवा से निवृत्त हो गये। इस तरह नरेन्द्र जी के व्यक्तित्व एवं पहचान बहुमुखी रही है।

### **नरेन्द्र जी का कृतित्व परिचय**

आधुनिक समकालीन साहित्यकारों में एक अच्छे कवि, नाटककार, निबंधकार तथा आलोचक के रूप में नरेन्द्र का एक अग्रणी स्थान रहा है। उनका समग्र साहित्य 'नरेन्द्र मोहन रचनावर्णिका' नाम से आठ खंडों में प्रकाशित है।

नरेन्द्र जी के सभी रचनावर्णिका साहित्य प्रेमियों, लेखकों, साहित्य जिज्ञासाओं और साहित्यिक अध्ययन करने वाले शोधार्थियों के लिए एक बहुत बड़ी आभाव की पूर्ति करेगा। नरेन्द्र जी सबसे पहले कविता के साथ साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया। उनके छोटे-छोटे कविता से लेकर लंबी-लंबी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

### **कविता-संग्रह**

1. विचार कविता की भूमिका - सन् 1975 - संजय प्रकाशन
2. इस हादसे में - सन् 1975 जून 20 - संजय प्रकाशन
3. समान होने पर - सन् 1971 - संजय प्रकाशन
4. दृष्य बदल दें - सन् 1971 - संजय प्रकाशन
5. एक अग्निकांड जगह बदलता - सन् 1983 - संजय प्रकाशन
6. हथेली पर अंगारे की तरह - सन् 1990 - संजय प्रकाशन
7. संकट दृष्य का नहीं - सन् 1993 और 1999
8. एक सुलगती खामोशी - सन् 1997
9. एक खिड़की खुली है अभी - सन् 2005

### **नाटक**

नरेन्द्र जी अपने विभिन्न नाटकों के द्वारा साहित्य प्रेमियों में विशेष रूप से चर्चित है। उनके नाटकों में ज्यादातर संघर्ष, विद्रोह और विरोध की भावना दिखाई देता है। सभी नाटक मंचित हुए हैं।

1. कहे कबीर सुनों भाई साधों-1988, 2. सिंगधारी-1899
3. कलंदर-1991, 4. नौ मैस लैंड-1994, 5. अभंग गाथा -2000, 6. मिस्टर जिन्न-2005 एवं 7. मंच अंदरे में-2005

## मातृभाषा पंजाबी में नाटक

1. पगले - 1991, 2. सींगधारी - 1991 एवं 3. कलंदर - 2000

## आलोचना

नरेन्द्र जी आधुनिक जीवन, समाज, आधुनिक हिन्दी कविता, कहानी, नाटक, कथा, उपन्यास आदि विषय लिखे हैं।

1. आधुनिक हिन्दी कविता में अप्रस्तुत विधान
2. आधुनिक और समकालीन रचना संदर्भ - 1973
3. कविता की वैचारिक भूमिका - 1978
4. समकालीन कहानी की पहचान - 1978
5. आधुनिक के संदर्भ में हिन्दी कहानी - 1978
6. पंजाब की लोक गाथा गीत - 1979
7. शास्त्रीय आलोचना से बिदाई - 1992
8. समकालीन हिन्दी के बारे में - 1994

## कहानी-संग्रह

नरेन्द्र जी का कहानी-संग्रह इस प्रकार है-

1. भारत विभाजन : उर्दू की श्रेष्ठ कहानियाँ - 1984
2. भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - 1984
3. खोई हुई खुशबू : पंजाबी की श्रेष्ठ कहानियाँ - 1984
4. सहादत हसन मंटों की कहानियाँ - 1992, 1994, 2000
5. समकालीन हिन्दी कहानियाँ, खंड-1-2 - 1994 और 2000
6. बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध हिन्दी कहानियाँ - 1996

## संपादित पुस्तकें

डॉ. नरेन्द्र जी ने कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कार्य के साथ अनेक पुस्तकों का संपादन कार्य किया है। जो इस प्रकार हैं-

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास-1975, 2. विद्रोह और साहित्य -1975, 3. सिक्का बदल गया-1975, 4. लंबी कवताओं का रचना विधान - 1977, 5. कहीं भी खत्म कविता नहीं होती - 1978, 6. विचार और लहू के बीच-1970, 7. प्रेमचंद का कथा साहित्य-1980, 8. संघर्ष परिवर्तन और साहित्य-1982, 9. सहादत मंटों के नाटक-1991, 10. लंबी कविताएँ-बीसवीं शताब्दी-1996 एवं 11. एक नदी है रचना-1997

## डायरी

साथ-साथ मेरा साया - 2003

## निबंध-संग्रह

रचना का सच- 2004 अन्य निबंध खंड - 8, में प्रकाशित है।

## अंग्रेजी लेखन

'The External No Dimensions of Pertestation Literature' Times of India, Indian Expre और जागरण पत्रिका के चीफ एडिटर भी रहे हैं।

## पत्र-पत्रिकाएँ

नरेन्द्र मोहन जी साहित्य सृजन के साथ-साथ कई पत्र-पत्रिकाओं में अपना महत्वपूर्ण योगदान भी दिये हैं। 1. भाषा, 2. वैभाषिक पत्रिका, मार्च-अप्रैल 2006, 3. सरिता, 4. हंस, एवं 5. जागरण

## टीवी धारावाहिक

भारतीय दूरदर्शन में ऋषिकेश मुखर्जी कि निर्देशन पर 'उजाला की ओर' सिरियल प्रस्तुत हुआ है।

## सम्मान एवं पुरस्कार

1. 'इस हादसे में से' कविता के लिए भाषा-विभाग पंजाब का प्रथम पुरस्कार मिला है।
2. सन् 1995 में पंजाब का सर्वोच्च साहित्यकार शिणोमणि सम्मान व पुरस्कार।
3. 'कहै कबी सुनों भाई साधों' नाटक पर हिन्दी साहित्य अकादमी, दिल्ली से पुरस्कार एवं सम्मान।
4. 'समकालीन कविता की पहचान' पुरस्कार के लिए 'भारत सरकार' अखिल भारतीय पुरस्कार।
5. 'कविता की वैचारिक भूमिका' कविता-संग्रह के लिए हरियाणा साहित्य अकादमी पुरस्कार।
6. 'आधुनिक के संदर्भ में हिन्दी कविता' पर हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश का प्रथम पुरस्कार प्राप्त है।
7. सन् 1999 को उत्तर प्रदेश के हिन्दी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण से सम्मानित एवं पुरस्कृत हुए हैं।
8. 'आधुनिक और समकालीन रचना संदर्भ' नामक आलोचना के लिए भाषा विभाग, पंजाब द्वारा प्रथम पुरस्कार प्राप्त है।
9. पंजाब का प्रथम पुरस्कार 'समान होने पर' कविता-संग्रह।
10. सन् 2003 में हिन्दी अकादमी, दिल्ली का साहित्यकार सम्मान।

## सहायक ग्रंथ-

1. नरेन्द्र मोहन रचनावली